PK
1859
M8V518

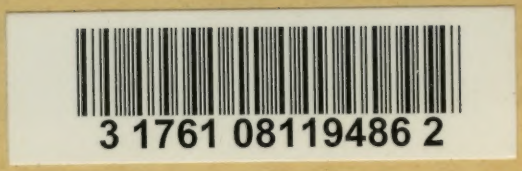

UNIVERSITY OF TORONTO
LIBRARY

WILLIAM H. DONNER
COLLECTION

purchased from
a gift by

THE DONNER CANADIAN
FOUNDATION

MUNSHI RAM MANOHAR LAL
ORIENTAL BOOKSELLERS & PUBLISHERS
POST BOX 1165, DELHI 6. INDIA

Digitized by the Internet Archive
in 2010 with funding from
University of Toronto

http://www.archive.org/details/vivmitra00muns

विश्वामित्र

[illegible]

विश्वामित्र

Viśvāmitra

Munshi, Kanaiyalal M

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

नवयुग प्रकाशन दिल्ली

PK
1859
M8V518

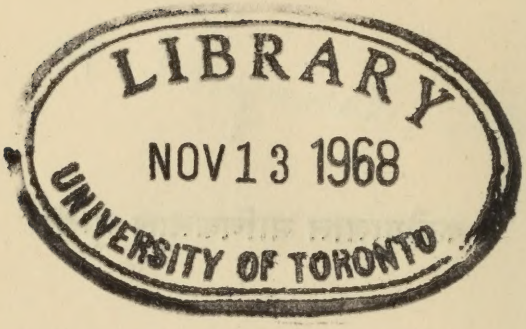

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे

प्रकाशक : नवयुग प्रकाशन
वैंग्लो रोड, दिल्ली।

मुद्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजेंसी द्वारा हरिहर प्रेस दिल्ली

नाटक

विश्वामित्र

पहला अंक

स्थान—तृत्सुग्राम से कुछ दूरी पर जंगल का निर्जन मार्ग ।

(सामने दूरी पर काले खेतों की दो ऊँची बाड़ दिखाई देती हैं । इन काले खेतों में दस्यु बन्दियों को बन्द रखा गया है । रात्रि मध्य हो चुकी है । पूर्णिमा का चाँद ऊपर चढ़ आया है । बाड़े के भीतर से दुःख-भरे रोने या पीड़ा से चिल्लाने की ध्वनि कभी-कभी सुनाई दे जाती है । कभी उल्लू बोल उठता है और वातावरण और भयानक बन जाता है ।

गय और एक सैनिक बातें करते हुए आते हैं । गय लगभग पच्चीस वर्ष का उग्र और रूपवान तृत्सु नायक है । उसके वक्ष पर, हाथ पर और पैरों पर कवच बँधे हुए हैं । उसकी कमर में तलवार और हाथ में भाला है । सैनिक के हाथ में केवल एक फरसा है । उसकी कमर में चमड़े का कोड़ा लटक रहा है ।)

सैनिक—अभी इसी समय कौन-सी हड़बड़ हो गई है ?

गय—हाँ, हाँ मेरी स्त्री और मेरा पुत्र इसी समय के लिए हठ पकड़े बैठे हैं ।

सैनिक—प्रातःकाल को क्या आपत्ति है ? इस समय सब दस्यु सोये पड़े होंगे ।

गय—इसकी तुम्हें क्या चिन्ता हो रही है ? दुष्ट, बहाने क्यों बनाता है ?

सैनिक—लड़की चाहिए या लड़का ?

गय—(अट्टहास करके) लड़की, लड़की । बड़ी होगी तो बहुत काम आयेगी ।

सैनिक—वह तो कदाचित् ही मिले । अच्छी-अच्छी लड़कियाँ तो कभी की चलती बनीं ।

गय—मेरा लड़का आठ वर्ष का है । उसे खेलने के लिए छः सात वर्ष की लड़की चाहिए । है कोई ?

सैनिक—दो तीन ध्यान में हैं ।

गय—किन्तु ध्यान रखना मुझे तो अच्छी, मोटी और रूपवती लड़की चाहिए जो बड़ी होने पर सब काम कर सके और जिसे बेचने पर पन्द्रह गौएँ तो प्राप्त हो सकें । समझे ?

सैनिक—आज इन काली-कलूटियों के लिए कोई दो गौएँ भी नहीं दे सकता है । आप जैसी चाहते हैं वैसी नहीं मिल सकती ।

गय—मिलेगी, मिलेगी । इतनी तो हैं । उसमें से क्या एक भी लड़की नहीं मिलेगी ? जाओ, जाओ शीघ्रता करो । मुझे अभी ही लौट जाना है ।

सैनिक—आज इतनी शीघ्रता क्यों है ?

गय—विश्वरथ के हर्म्य का घेरा डालना है ।

सैनिक—क्यों ? क्या बात हो गई ?

गय—क्या तू नहीं जानता ?

सैनिक—मैं क्या जानूँ ? मैं तो अब गाँव जाऊँगा ।

गय—विश्वरथ ने शाम्बरी से विवाह करने का प्रण ठान लिया था, इस

लिए गुरु अगस्त्य ने आज्ञा दी है कि कल प्रातःकाल तक उसे सौंप दो।

सैनिक—यह तो मैं जानता हूं।

गय—पर विश्वरथ ने यह निश्चय किया है कि कल प्रातःकाल भरतों को साथ लेकर तृत्सु ग्राम छोड़कर चल दिया जाय!

सैनिक—क्यों?

गय—क्योंकि उसे गुरु की आज्ञा मान्य नहीं है।

सैनिक—तब?

गय—तब क्या? गुरु जी ने प्रतीज्ञा कर ली है कि यदि भरत लोग तृत्सुग्राम छोड़कर चले जायेंगे तो वह प्राण त्याग देंगे।

सैनिक—बाप रे बाप! अब?

गय—अब क्या? राजा दिवोदास की आज्ञा है कि भरतों को अपना हर्म्य ही न छोड़ने दिया जाय। इसीलिए तो मैं आज इतना व्यस्त दिखाई दे रहा हूँ।

सैनिक—पर अब विश्वरथ क्या करेगा?

गय—विश्वरथ! वह तो उस कलूटी पर जी-जान से मरता है। लाज हया सब धो बताई है। और ऊपर से कहता है कि मैंने तो सूर्य-देव का आवाहन करके शाम्बरी को आर्या बना लिया है।

सैनिक—शाम्बरी और आर्या! कहीं बुद्धि चरने चली गई है क्या?

गय—और क्या? क्या ये काले कलूटे भी आर्य बन सकते हैं? जाओ, अब देर न करो।

सैनिक—देवताओं ने इन काले कलूटों को उत्पन्न ही क्यों कर दिया?

गय—(हँसकर) हमारी सेवा करने के लिए और क्यों?

(सैनिक और गय दोनों मिलकर एक बड़ा-सा द्वार अत्यन्त परिश्रम से खोलते हैं, और उसमें से होकर सैनिक भीतर चला जाता है। भीतर जाकर उसे बन्दियों को कोड़े लगाना सुनाई देता है, और दस्यु स्त्री-पुरुषों की चिल्लाहट भी सुनाई देती है। कुछ बच्चे भी रोते हैं। थोड़ी देर

पश्चात वह तीन प्रौढ़ वयस्क-स्त्रियों को लेकर आता है। प्रत्येक स्त्री के साथ आठ वर्ष की एक-एक लड़की है। स्त्रियों के शरीर पर नाम-मात्र के लिए ही वस्त्र हैं। बच्चे नंगे हैं। स्त्रियाँ डरती और घबरातीं हुई आती हैं, और अपनी-अपनी लड़की का हाथ थामे हुए हिचकिचाती हुई खड़ी रहती हैं।)

गय—लाये ?

सैनिक—जी हाँ तीन हैं। इनमें से जिसे चाहें प्रसन्द कर लें।

(तीनों स्त्रियों को पंक्ति में खड़ा करता है। गय निर्लज्जता से लड़कियों का परीक्षण करता है।)

गय—(एक लड़की के पास खड़ा होकर) यह तो रोती है।

पहली स्त्री—(दुःखी होकर) मुझे ले चलो। यहाँ तो मैं मर जाऊँगी।

सैनिक—(पहली स्त्री का हाथ पकड़ कर उसे वेग से झकझोरता है।) चुप रह निर्लज्ज ! तू मर जायगी तो कौन-सी सूर्य की गति रुक जायगी, जा ! (वह स्त्री निःश्वास छोड़कर लड़की को लेकर जाने के लिए घूमती है। खड़ी होकर फिर पीछे घूमकर देखती है। सैनिक की बड़ी-बड़ी आँखें देखकर घबरा जाती है, और घबराई हुई उसी द्वार में से होकर चली जाती है। गय दूसरी स्त्री के पास आकर उसकी लड़की का परिक्षण करता है।)

गय—नीचे उतार। (दूसरी स्त्री असहाय दशा में लड़की को गोद से उतारती है। गय लड़की के गाल को हाथ लगाता है।)

दस्यु कन्या—(रो देती है) ओ—ओ।

(माता धरती पर बैठ कर लड़की को गले लगाती है और उसे चुप कराने का प्रयत्न करती है।)

गय—चुप रह। (माता को हटाकर लड़की के सिर पर थप्पड़ जमता है।) बात-बात में क्यों रोती है ? सैनिक ! मैं इसी लड़की को ले जाऊँगा। (तीसरी स्त्री की ओर देखकर) इसका अब काम नहीं है। यही अच्छी है।

(सैनिक तीसरी स्त्री को धक्का मारकर द्वार की ओर ढकेल देता है। गय लड़की का हाथ पकड़ता है। उसकी माता उससे लिपटती है।)

सैनिक—चल ! सावधान, यदि बोली तो।

(तीसरी दस्यु स्त्री को बाड़े में भिजवाता है।)

गय—(सैनिक से) इस लड़की की माँ को भी ले जाओ।

सैनिक—(आश्चर्यचकित होकर) इस लड़की को अकेले ले जाते हैं ?

गय—इस औरत का मुँह तो देखो, इसे ले जाकर क्या करूँगा ?

(लड़की को उसकी माता से छुड़ा लेता है।)

दस्यु कन्या—(रोकर) ओ, ओ, (माता से लिपट जाती है। माता के साथ जाने के लिए तैयार होती है।)

गय—(क्रोध से धक्का देता है।) तुझे ले जाकर क्या करेंगे ? तू जा—लौट जा अपने बाड़े में।)

दस्यु स्त्री—(रोते स्वर में) क्यों मुझे नहीं ले चलते ? मुझे भी लेते चलो। मेरी लड़की मेरे बिना क्या करेगी ? (बैठे-बैठे धरती पर सिर रखकर दुःखी होती है।) ले चलो, आप जो कहेंगे वही काम करूँगी। नहीं तो छोड़ दो मेरी लड़की को मेरे पास। (पुनः लड़की को गले लगाती है।)

गय—(लड़की को छुड़ाने का प्रयत्न करता।) छोड़ दे री, छोड़ दे।

(माता बैठकर लड़की से लिपट जाती है।)

दस्यु स्त्री—अन्नदाता, मेरी लड़की को अकेली न ले जाइए। मैं उसके बिना मर जाऊँगी। आप जो कहेंगे, वह करूँगी। मेरा आप पर कोई भार न होगा। मेरे सब बच्चों में यही एक अकेली बची है मेरे पिता, मुझे यहाँ छोड़कर न जाइए।

(लड़की से लिपट कर चीख मारती है।)

गय—(तिरस्कार से) इन दुष्टाओं को बच्चे कितने प्यारे हैं ? (हाथ में भाला लेकर दस्यु स्त्री को मारता है। उसके शरीर से रक्त बह निकलता है।) छोड़, छोड़, नहीं तो अभी मार डालूँगा

(स्त्री चिल्लाती है। उलटा सिर करके लड़की से लिपटकर सिसकियाँ लेती है।)

दस्यु स्त्री—(लड़की को छाती से लगाकर) मारो, हम दोनों को मार डालो। पापी—

गय—(क्रोध से) सैनिक इस राक्षसी को ले जाओ यहाँ से। (भाले से दस्यु स्त्री को फिर दो-चार घाव करता है। ज्यों-ज्यों घाव लगते हैं त्यों-त्यों दस्यु स्त्री अपनी लड़की को अपने पास रखने के लिए उस पर झुकती है। लड़की फूट-फूट कर रोती है।) ले मर—मरना ही हो तो मर?

दस्यु स्त्री—ओह—ओह (मूर्छित होकर गिरती है।)

गय—(निर्दयता से) एक नन्हीं-सी लड़की के लिए ये दुष्ट कितना दुःख देते हैं।

(नीचे झुक कर लड़की का हाथ पकड़कर खींचता है। सैनिक उस मूर्छित दस्यु स्त्री को हटा देता है। लड़की फूट-फूट कर रोती है। गय लड़की का हाथ पकड़कर उसे झकझोर देता है। चुप रह नहीं तो अभी तुझे भी मार डालूँगा। (रोती हुई लड़की को मारता और घसीटता हुआ ले जाता है। लड़की के रुदन के साथ-साथ भीतर के बन्दी भी रोने लगते हैं।)

पहला सैनिक—कुत्स, कुत्स, इधर तो आ। (दूसरा सैनिक आता है।) अरे भाई, हाथ तो लगाओ। इस दुष्ट को भीतर डाल दूँ और प्रवेश-द्वार बन्द कर दूँ।

दूसरा सैनिक—क्या हुआ है?

पहला सैनिक—अरे, और क्या? सेनानायक गय को इसकी लड़की चाहिए थी और यह दे नहीं रही थी। (दोनों दस्यु स्त्री को उठाते हैं और बाड़े के प्रवेशद्वार तक ले जाते हैं। लात मारकर भीतर ढकेल देते हैं और द्वार बन्द कर देते हैं।)

पहला सैनिक—अरे कुत्स ! विश्वरथ को देखा ! एकदम पागल हो गया है। इन सबको वह आर्य बनाने चला है। हः—हः—हः—हः !

(सब बातें करते हुए चले जाते है। थोड़ी देर में उसी मार्ग से ऋक्ष आता है। वह मार्ग पर ही गिर पड़ता है। उसका सिर एक ओर झुकता है। स्तूप जैसा उसका बड़ा पेट चाँदनी में चमकने लगता है। उसके हाथ में सुरा का बड़ा-सा घड़ा है। वह मूर्छित-सा है फिर भी उसका हाथ उसके मुँह का स्पर्श करने के लिए प्रयत्नशील है। उसके बड़े-बड़े मोटे-मोटे नथनों में से पृथ्वी को कँपाने वाला निःश्वास निकलता है जिस से मरुत भी ईर्ष्या कर सकते हैं। ऋक्ष आँखें बन्दकर पड़े-पड़े कुछ बोलता है।)

ऋक्ष—दुष्ट अजीगर्त, (हिचकी लेता है।) धूर्त ! भगवती लोपामुद्रा के साथ जाकर एकान्त में बात कर आया ? ऐं (हिचकी लेता है।) और फिर हाथ से निकल भागा·····नीच (हाथ से छूटे हुए मदिरा-पात्र को टटोलने का प्रयत्न करता है।) भगवती लोपामुद्रा ! (चलने का निष्फल प्रयत्न करते हुए) अरे, यह क्या ? क्या धरती भी बादलों के समान हटना सीख गई है ? अरे वाह ! क्या चन्द्रमा भी चक्कर खाने लगा ? अभी इधर चमकता था अब उधर चमकने लगा। हः हः हः हः ! (ठठाकर हँसता है।) बादल भी घूम जाता है। अच्छा (बैठना चाहता है लेकिन मद की झोंक में गिर पड़ता है। गला भर्रा जाता है।) आज मेरे गले में आग लगी है। किसी प्रकार भी प्यास बुझती ही नहीं। (मदिरा-पात्र को ढूँढ़ता है।) मदिरा-पात्र कहाँ चला गया ? ओह ! यह है, यह रहा।

(उसे उठाने का प्रयत्न करता है पर उठा नहीं पाता।)

ऋक्ष—क्या हुआ है ? किसी प्रकार भी आ नहीं रहा है मुँह के पास। (पात्र लेकर मुँह से लगाता है। सोते-सोते पैर हिलाता है।) अच्छा, मैं झटपट चलूँ नहीं तो अजीगर्त भाग जाएगा। वेग से पैर हिलाता है।) आज इस धरती को क्या हो गया है ? कहाँ चली गई ? पैर को लगाती ही नहीं। कैसी विचित्र बात हो गई है ! ऐं (पैर रोककर चारों ओर देखता है।) पूर्णिमा की रात भी कभी-कभी अन्धकारपूर्ण हो जाती है। प्यास लगी है तो भी पात्र निकट नहीं आता। चलना चाहता हूँ पर धरती निकट नहीं आती। यह क्या हो गया है ? (चन्द्रमा की ओर देख कर) क्या हुआ ? वह देखो, चन्द्रमा विचित्र ढंग से सामने खड़ा है। मेरे पैर धरती पर नहीं हैं, किन्तु बादल पर है और सामने यह गोल टील खड़ा है। इसीलिए मेरे पैर नहीं दिखाई देते। (पेट की ओर देख कर) यह टीला कहाँ देखा था ? (हँस देता है।) अरे हाँ, स्मरण आया। यह तो मेरा पेट है ! (हँसता है।) दो दस्यु धीरे-धीरे बातें करते हुए आते हैं। वह सुनता है।)

ऋक्ष—दूसरी ओर से किसी का स्वर सुनाई पड़ता है (चारों ओर देख कर) हः हः हः हः—मैं तो गड्ढे में पड़ा हुआ हूँ। (बड़े परिश्रम से बैठता है और हँसता हुआ विचार करता है। कौन बात करता है ! यह तो शाम्बर का स्वर बोल रहा है। हः हः हः हः—शम्बर के गढ़ में पड़े-पड़े वहाँ की लड़कियों से मैंने क्या-क्या नहीं सीखा ? (ऊपर देखकर स्मरण करता है।) कोई-कोई तो कैसी रसीली और चटकीली थी ? कैसा आनन्द आता था ? धिक्कार है इन लड़वैयों को ! चारों ओर रोना-धोना मचा रखा है। जहाँ देखो वहीं मारो—काटो !

(ऋक्ष चुप हो जाता है, दो दस्तु आते हैं। एक वृद्ध है और दूसरा युवा है दोनों ने मोटे कपड़े का लंगोटा लगा रखा है। दोनों डरते हुए

बाड़े के पास से होकर चलते हैं। वे ऋक्ष को नहीं देखते। अन्त में आगे आकर धीरे-धीरे बातें करते हैं)।

युवा दस्यु—(हठपूर्वक) हाँ, हाँ सच है। हमारी उग्रा बहन को आर्य बना लिया है।

वृद्ध दस्यु—अरे चुप भी रह। अपनी जाति को तो उसने लीप-पोतकर बराबर कर दिया है।

युवा दस्यु—नहीं, नहीं, मुझे स्वतः वृक ने कहा कि उसके कारण हम सब का उद्धार हो जायेगा।

वृद्ध दस्यु—हो चुका, हो चुका! उसे तो उग्रकाल का शाप है।

ऋक्ष—(सिर पीटते हुए) उग्रकाल! हाँ···(स्मरण करके बड़बड़ाता है।) ठीक है। कैसा था वह नृत्य! और सुरापान का कैसा आनन्द और भोजन के पचने तक लड़कियों के साथ नाचना। (आनन्द की लहर में सिर पीछे डालकर) हः हः हः हः—चाहे जो भी हो पर उग्रकाल था फक्कड़।

युवा दस्यु—उग्रकाल ने कौन-सा हमें निहाल कर दिया! इतनी विपत्ति में तो ला डाला।

वृद्ध दस्यु—क्या बकता है रे उग्रकाल सुन लेगा तो प्राण ले लेगा।

युवा दस्यु—ऊं हूँ उग्रकाल।

वृद्ध दस्यु—हाँ, हाँ, उग्रकाल देव तो जीते जागते बैठे हैं।

(ऋक्ष खड़ा होकर उछलता है, और उसी प्रकार नाचने लगता है। दस्यु इसे देखकर घबराते हैं और फिर उग्रकाल समझ कर लेटकर धरती पर माथा टेकते हैं ऋक्ष नाचता ही रहता है।)

ऋक्ष—(स्वगत) कौन कहता है कि मैं महर्षि नहीं हूँ। क्या अकेले अगस्त्य की ही पूजा होती है? मेरी भी होती है। (निकट आ कर दस्यु को उठाता है और उन्हें सुरापात्र में से दो-दो बूँद सुरा का प्रसाद देता है।) खड़े हो जाओ। मैं अपने भक्तों पर प्रसन्न हूँ। खड़े हो जाओ। हाथ जोड़ो। चलो मेरे साथ आओ

घबराओ मत । मैं उग्रकाल हूँ । क्या तुम अस्वीकार करते हो ?

(ऋक्ष दस्युओं के हाथ में हाथ डालता है और जिस प्रकार शम्बर के गढ़ में दस्यु नाच करते थे, उसी प्रकार तीनों नाचते हैं ।)

वृद्ध दस्यु—बाप रे, कोई आ रहा है । (ऋक्ष हाथ छोड़कर बाड़े में घुस जाता है । कुत्स और उसका साथी दोनों आते हैं । ऋक्ष उनके सामने उछल कर आता है और दस्यु के सामने नाचता है ।)

(आर्य सैनिक—उसे देख कर भाग जाते हैं ।)

ऋक्ष—क्या मुझे पहचानते नहीं ? डरते हो क्या ? मैं इन्द्र और उग्रकाल दोनों को काँख में दबाये घूमता हूँ । शम्बर और दिवोदास दोनों को गोद में खिलाकर बड़ा किया है, विश्वरथ और शाम्बरी तो मेरे कहे बिना पानी तक नहीं पीते । विश्वरथ ने आर्या बना डाला ? ऊँहूँ विश्वरथ जब चार अँगुली का था तब से तो आर्या बनाने का मार्ग मैंने उसे दिखाया । शम्बरपुर में एक मास तक मैं अकेला ही जितनी चाहता उतनी आर्या बना डालता था ।

वृद्ध दस्यु—अरे यह तो पूरा पागल जान पड़ता है । चलो, चलें यहाँ से ।

युवा दस्यु—भाव, जिसने उग्रकाल को प्रार्थना करके आर्य सैनिक भगा दिये, उसे पागल कैसे कहा जाये ? अन्नदाता हमें अब आज्ञा दीजिए ।

ऋक्ष—कैसी आज्ञा चाहिए ? कहो मैं दे दूँगा ।

वृद्ध दस्यु—हम अपने जाति-भाइयों से मिलने आए हैं ।

ऋक्ष—तुम्हारे जाति-भाई ? तुम्हारे दस्यु ? यहाँ कहाँ हैं ? मुझे तो कोई दिखाई नहीं देता ।

वृद्ध दस्यु—अन्नदाता, वह काला खेत है न ?

ऋक्ष—काला खेत ? अच्छा ! जहाँ तुम्हारे बन्दी बन्द किये गए हैं वह मैंने तो कभी देखा ही नहीं है। (गाम्भीर्य से) अच्छा ! पर यह काला खेत क्यों ? हरा नहीं, काला ही क्यों ?

(ठट्ठा मारकर हँसता है।)

युवा दस्यु—अन्नदाता ! हमारे लोगों को उसमें बन्द किया जाता है, इसलिए वह काला कहलाता है।

ऋक्ष—(स्मरण कर) नहीं, नहीं। भगवती लोपामुद्रा एक बार कहती थीं—यह काला खेत इसलिए कहलाता है कि हमारे सफेद मस्तक पर काला टीका है। हा-हा-हा-हा ! (ध्यान से देखने का कष्ट उठाता है।)

वृद्ध दस्यु—यह काँटे की ऊँची बाड़ है, उसी के पीछे।

ऋक्ष—अच्छा, इसमें कितने दस्यु बन्द किये गए हैं ?

वृद्ध दस्यु—अब तो आठ सौ या दस सौ रह गए होंगे।

ऋक्ष—बस ! और सब कहाँ चले गए ?

वृद्ध दस्यु—प्रतिदिन अच्छे-अच्छे दस्युओं को आप लोगों के दास बनाने के लिए निकाल लिए जाते हैं। बचे हुए दस्युओं को संध्या होने पर फिर से लाकर बन्द कर दिया जाता है।

ऋक्ष—(ऐंठ से) क्या बन्द कर देते हैं ? हमारा विश्वरथ तो दस्युओं को आर्य बना रहा है और राजा दिवोदास उन्हें बन्द कर देता है ? (क्रोध का अभिनय करके) पर तुम क्यों नहीं अब तक बन्द किये गए ?

युवा दस्यु—हम तो दास हैं, और तृत्सुग्राम में रहते हैं।

ऋक्ष—तब यहाँ क्यों आये हो ?

युवा दस्यु—कभी-कभी आधी रात को चोरी-छिपे चले आते हैं।

ऋक्ष—(कृपा दिखाते हुए।) अच्छा, समझा, समझा। तुम कायर हो। (धूर्तता से हँसते हुए) दिन में आने का तुममें साहस नहीं है। तुम डरपोक जो हो।

वृद्ध दस्यु—अन्नदाता ! इस समय जो हम आते हैं इसमें भी बड़ा संकट है। यदि पकड़े जायें तो हमारे धड़ पर सिर न रह पाये।

ऋक्ष—(ताव से) तब हे भीरुओ ! हे नपुंसको ! हे निःसत्त्वो ! इस समय यहाँ क्यों आते हो ?

वृद्ध दस्यु—क्या करें अन्नदाता ? हमारे संबन्धी यहाँ पड़े हैं, इसलिए कभी-कभी मन उचाट हो जाता है और यहाँ खींच लाता है। आज विश्वरथ ने उग्रा बहन को आर्या बनाया है और अब रानी बनाएगा। उसे बधाई देने हम आये हैं।

ऋक्ष—बधाई ! कोई बात है ? हमारा विश्वरथ और हम तो दस्युओं का उद्धार करने पर तुले हुए हैं और तुम लोग यों घबरा-घबरा कर प्राण दिए जा रहे हो ? (क्रोध से) धिक्कार है तुम्हें ! नपुंसको ! मैं दुर्दमन का पुत्र ऋक्ष—अगस्त्य का प्रिय शिष्य—और विश्वरथ का मित्र तुम्हें सूचना देता हूँ कि तुम्हारा उद्धार हो गया है। जाओ, नाचो, कूदो, सुरा-पान करो। (नाचता है) उग्रकाल प्रसन्न !

वृद्ध दस्यु—अन्नदाता ! कौन-सा मुँह लेकर हँसे ? हमारे भाई-बन्धु तो पशुओं की भाँति इस बाड़े में बन्द हैं।

ऋक्ष—क्या इसमें स्त्रियाँ भी बन्द हैं ?

वृद्ध दस्यु—हाँ, पुरुष हैं स्त्रियाँ हैं, लड़के हैं।

ऋक्ष—(चकित होकर) वहाँ बैठे-बैठे वे करते क्या हैं ?

वृद्ध दस्यु—करते क्या हैं ? कोड़ों की मार खाते हैं, पानी बिना तड़पते हैं, मृत्यु की बाट जोहते बैठे हुए हैं।

ऋक्ष—भगवती लोपामुद्रा ! आपकी बात सत्य हैं, नितान्त सत्य हैं। हम आर्य लोग बड़े दुष्ट हैं।

वृद्ध दस्यु—किन्तु राजा दिवोदास आपको कुछ नहीं करने देगा अन्न-दाता !

ऋक्ष—वह दिवोदास होता कौन है ? वह किस खेत की मूली है ? मैं,

हमारा विश्वरथ और हमारी भगवती लोपामुद्रा यदि उद्धार करने बैठें तो किसकी शक्ति है कि वह बीच में विघ्न डालें ? विश्वरथ जैसा भरतों का राजा तुम्हारी आर्यों में श्रेष्ठ शाम्बरी को रानी बना रहा है, फिर क्या ? चलो मुझे अपने जाति भाइयों के पास ले चलो। मैं उनका उद्धार करूँगा। क्या यही काला खेत है ? निश्चित रूप से ?

वृद्ध दस्यु—हाँ अन्नादाता ! यही काला खेत है।

ऋक्ष—अच्छा ! सुनाई पड़ता है। स्वर सुनाई पड़ता है, पर मुझे मार्ग नहीं दिखाई पड़ता। मुझे भीतर ले चलो।

वृद्ध दस्यु—अन्नदाता, भीतर जाने का मार्ग नहीं है। द्वार बन्द हैं।

ऋक्ष—उसे खोल दो, मेरी आज्ञा है।

वृद्ध दस्यु—अरे, यह स्वतः भी मरेगा और हम लोगों को भी मरवा डालेगा, समझे।

ऋक्ष—चलो, खोलो। क्या मेरा कहना नहीं मानते ?

वृद्ध दस्यु—अन्नदाता, यह द्वार खुल नहीं सकता।

ऋक्ष—क्या बकता है ? हटो अग्निदेव का आवाहन करता हूँ।

युवा दस्यु—जलाया जाये, पर कैसे ?

ऋक्ष—हे अग्निदेव ! मैं आपका आवाहन करता हूँ। आप अपने चारों सींगों से इस बाड़े को उलट दीजिए। अपने तीनों पैरों से इस बाड़े को कुचल डालिए। अपने सातों हाथों से इस बाड़े को हटाकर दस्युओं को मुक्त कर दीजिए।

युवा दस्यु—पर कहाँ से ?

ऋक्ष—मूर्ख ! देखता नहीं कि मेरी कमर में यह चकमक बन्धा है, उसी से। मुझसे खुल ही नहीं रहा है। देखता क्या है ? खोल ले।

युवा दस्यु—जैसी आज्ञा।

ऋक्ष—ओ३म चत्वारी शृंगात्रयोऽस्त पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सोऽस्या-

त्रिधा बद्धो वृषको रोरवीति । वाह ! अच्छा चिल्लाता हूँ मैं ।

दस्यु—उग्रकाल प्रसन्न ।

ऋक्ष—उग्रकाल प्रसन्न ! वत्सो ! शत शरद् जीवित रहो ।

वृद्ध दस्यु—अन्नदाता, इन लोगों को बचाइये । ये सब आपकी शरण में हैं । इन्हें मरने से बचा लीजिए ।

ऋक्ष—किसकी शक्ति है कि मेरे इन दस्युओं को अंगुली तक लगा सके ? देखता हूँ ।

वृद्ध दस्यु—अन्नदाता, दिन निकलते ही आप तो चले जायेंगे और फिर बाड़ा तोड़कर निकलने के अपराध में सेनापति इन सब को मार डालेगा ।

ऋक्ष—क्या ? क्या ? मेरे भक्तों को सताने वाला है कौन ?

एक दस्यु कैदी—अन्नदाता ! हम तो दास हैं ।

ऋक्ष—दास, दास ! झूठ बात है, अत्यन्त झूठ बात है । मैं और मेरे विश्वरथ सबको अभी आर्य बनाये देते हैं ।

दो-चार दस्यु—आर्य ! हमें आर्य बनायेंगे ?

वृद्ध दस्यु—भाइयो ! आज बड़ी अनहोनी बात हुई है । विश्वरथ भरत-श्रेष्ठ ने हमारी उग्रा बहन को आर्या बनाया है और कल महर्षि के रूप में अभिषेक करने वाले हैं ।

ऋक्ष—मूर्खो ! तुम क्या सोचते हो ? हम कौन हैं ? आज शाम्बरी आर्या बन गई है । कल सबेरे भरतश्रेष्ठ की रानी बन जाएगी । परसों तुम सब आर्य बन जाओगे ।

सुरा—कौन, ऋक्ष ! क्या मुझे नहीं पहचाना ? मैं दासी की छोटी बहन हूँ ।

ऋक्ष—कौन, सुरा, सुरा ! बड़ी अच्छी लड़की है ।

सुरा—ऋक्ष, ऋक्ष ! मुझे उग्रा बहन के पास ले चलो ।

ऋक्ष—अच्छा सब चलो । शाम्बरी तो हमारी महिषी होने वाली है । चलो, सब मेरे साथ चलो । चलो, चलो, चलो ।

(सब सन्न हैं । यवनिका गिरती है ।)

दूसरा अंक

समय—चार घड़ी बाद।

चाँद पश्चिम में दिखाई दे रहा है।

सामने विश्वरथ का सेनापति प्रतर्दन खड़ा है। उसकी मुख-मुद्रा कठोर है तो भी इस समय वह स्वस्थ-सा दिखाई दे रहा है एक ओर भरतश्रेष्ठ विश्वरथ का विश्वास-पात्र दस्यु वृक खड़ा है।

उसके आगे उग्रा का शव पड़ा है, उस पर मृग-चर्म ढका हुआ है। पास में एक दास शव लेकर खड़ा है। शव के बाईं ओर आगे से गाँव का मार्ग है, दाहिनी ओर आगे का तट अगस्त्य के आश्रम की ओर फैला हुआ दिखाई देता है।

[विश्वरथ का प्रवेश)

विश्वरथ—(भर्राए हुए उद्वेगपूर्ण स्वर से) जमदग्नि, जमदग्नि! क्या यह सच है कि शाम्बरी को भैरव ने मार डाला? बताओ!

जमदग्नि—मामा! विश्वरथ!

विश्वरथ—उग्रा, उग्रा, मर गई और भैरव, उसका घातक मारा गया? मैंने मार डाला?

जमदग्नि—हाँ, हाँ, पर तुम शान्त तो हो जाओ भाई।

(बाहर घोड़े हिनहिनाते हैं।)

विश्वरथ—(चौंककर) प्रतर्दन, प्रतर्दन, प्रतर्दन यह क्या है?

प्रतर्दन—भरतश्रेठ, हमारी सेना तैयार है।

विश्वरथ—सेना। किसलिए तैयार है?

प्रतर्दन—आपने आज्ञा दी थी, इसलिए राजन् ! सूर्योदय होने पर हमें तृत्सुग्राम छोड़कर चल देना है न ?

विश्वरथ—(दोनों हाथों से सिर दबाकर) हाँ, हाँ, सूर्योदय होने पर तृत्सुग्राम छोड़ देना है···सूर्योदय होने पर शाम्बरी भी गुरुजी को दे देनी थी। हाँ, हाँ, पर शाम्बरी, है कहाँ मेरी उग्रा ? (रो देता है।) गई, निर्दोष उग्रा ? गई।

प्रतर्दन—तो अब आज्ञा है राजन् ?

विश्वरथ—गुरुवर्य क्या कहते हैं ?

जमदग्नि—गुरुदेव तो भगवती लोपामुद्रा की देख-रेख करने में लगे हैं।

प्रतर्दन—तो अब हम क्या करेंगे ?

विश्वरथ—करेंगे, क्या ? चलो शाम्बरी का अग्निदाह कर दिया जाय। (प्रतर्दन घबराकर पीछे हटता है। जमदग्नि आँखें फाड़ कर देखता है।)

प्रतर्दन—अग्निदाह ?

विश्वरथ—क्यों शाम्बरी के प्रेत को भी भटकने देना होगा ?

प्रतर्दन—नहीं—नहीं राजन् ! मैं समझा कि उसे गाड़ना पड़ेगा।

विश्वरथ—वह तो मेरी पत्नी थी प्रतर्दन सूर्यदेव के द्वारा स्वीकृत आर्या—मेरी मानी हुई, भरतों की महिषी। अग्नि ही उसे यमलोक में ले जायेगा। वृक, इसे श्मशान ले चलने की तैयारी करो।

प्रतर्दन—कौशिक, कौशिक, कुछ तो विचार करो हमारी कुछ तो सुन लो, जहाँ से हमारे महर्षि अङ्गिरा और भरद्वाज पितृलोक में पधारे, वहाँ···वहाँ शाम्बरी का अग्निदाह कैसे हो सकता है ? राजन् राजन् आपको क्या हो गया है ? पितरों का भी आपको विचार नहीं रहा ? आप क्या करने बैठे हैं ?

(घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़ता है।)

विश्वरथ—देव, देव इन आर्यों के अभिमान से तो मैं ऊब गया हूँ। क्या आप नहीं ऊबे ? सच बात है प्रतर्दन, आर्यों ने इसके पिता का, इसकी जाति और इसे सता-सताकर मार डाला, (वृक से) वृक, तू तो मेरा कहना मनेगा न ?

वृक—अन्नदाता ! आज्ञा कीजिए ! मैं तो आपका दास हूँ।

विश्वरथ—मेरी निष्कलंक उग्रा के प्रेत को किसी भी अभिमानी आर्य का स्पर्श नहीं होना चाहिए। सरस्वती देवी यहीं मेरे हर्म्य के सामने बहती है। मेरे तप में बल होगा तो यहीं शोचिष्केश अग्निदेव आयेंगे और उग्रा के शव को ले जायेंगे। यहीं यह पतितपावनी स्रोतस्विनी उसकी अस्थियाँ अपने अन्तर में समाविष्ट करेगी। जाओ प्रतर्दन, मुझे किसी की आवश्यकता नहीं है। तुम भी जाओ जमदग्नि।

जमदग्नि—क्यों घबराये जा रहे हो विश्वरथ ? देव ने जिसे आर्या स्वीकार कर लिया है। उसकी मानव कैसे अवगणना कर सकता है ? चलो वृक ? हम अग्निदाह की तैयारी करते हैं। मैं सब व्यवस्था किये देता हूँ।

(जमदग्नि और वृक जाते हैं। विश्वरथ थोड़ी देर में शाम्बरी के शव के पास जाता है, मृगचर्म हटाता है और देखता है। फिर ढक कर आह भरता हुआ एक पत्थर पर आकर बैठ जाता है, और विचारशून्य-सा होकर भूमि की ओर देखता है। नायक गय और एक तृत्सु सैनिक ग्राम के मार्ग से आते हैं और बीच-बीच में बात करते जाते हैं।)

गय—तुम यहीं छिपकर खड़े रहो और आवश्यकता पड़ने पर मुझे बुला लेना। एक भी भरत को यहाँ से भागने नहीं देना है। राजा अतिथिग्व की आज्ञा है।

तृत्सु सैनिक—(शव की ओर निर्देश करके) नायक, यह देवता ? उस शाम्बरी की लाश है। कहते हैं कि एक ही चोट में भैरव ने सिर और धड़ अलग-अलग कर दिए।

गय—चलो झंझट मिटा।

(गय जाता है। तृत्सु सैनिक छिपकर खड़ा रहता है। जमदग्नि, वृक और दो दास आते हैं। दासों के कन्धे पर लड़की के गट्ठे हैं।)

जमदग्नि—वृक ! यहीं चिता बिठाओ।

वृक—जैसी आज्ञा।

(जमदग्नि जाता है। वृक और दास चिता लगाते हैं। विश्वरथ मूर्छित के समान बैठा रहता है ; भरतों के नायक प्रतर्दन और प्रतीप आते हैं। प्रतीप लगभग तीस वर्ष का युवा आर्य है। वह शस्त्र-सज्जित है।)

प्रतीप भरत—सेनापति !

सेनापति—कहिए देव !

प्रतीप भरत—देखो ? तृत्सुओं ने चारों ओर पहरा बैठा दिया है।

सेनापति प्रतर्दन—कोई चिन्ता नहीं। अभी हमें जाने में देर है, और फिर शाम्बरी के मर जाने से सब टंटा भी मिट गया है। पर हमारे सैनिक भी तो लैस हैं।

प्रतीप भरत—अच्छा पर अब हम यहाँ रहना नहीं चाहते। सबका जी ऊब गया है।

(पौ फटती है। दूर तट पर मनुष्यों का झुण्ड आता दिखलाई देता है।)

सेनापति प्रतर्दन—(ध्यान से देखकर) यह क्या है ? बड़े विराट सर्प ! क्या आ रहा है ? बिल्कुल यह तो दस्युओं का झुण्ड का-झुण्ड आता जान पड़ता है।

प्रतीप भरत—देखते क्या हैं, कोई तो एक मनुष्य को कन्धे पर उठाये हुए है, कोई किसी को सहारा देकर आगे चला आ रहा है, और कोई-कोई अपंग अपने को ही घिसियाता हुआ आ रहा है। क्या वह मूर्ख उन सबको यहाँ ला रहा है ? चलो, तो।

(जमदग्नि का प्रवेश। वह विश्वरथ को उठा कर ले जाता है। वृक और दास चिता तैयार कर लेते हैं। जमदग्नि नदी में से कमण्डल भर कर लाता है, उग्रा पर जल डालता है। दोनों मिलकर शव को उठाने वाले हैं। नैपथ्य से जय-जयकार का स्वर गूँजता है—विश्वरथ और जमदग्नि शव उठाना छोड़कर उधर देखते हैं।)

विश्वरथ—यह क्या ?

जमदग्नि—यह तो वही ऋक्ष है। ऐसे समय भी इसे चेत नहीं है।

तृत्सु सैनिक—(स्वगत) अरे, यह क्या ? (दौड़ जाता है।)

विश्वरथ—पर इसके साथ ये सब कौन हैं ? देखो तो ?

ऋक्ष—(आकर) विश्वरथ, कौशिक, भरतश्रेष्ठ, यहाँ क्या कर रहे हो ? मेरे इन सब दासों का उद्धार करो। इन्हें आर्य बना लो तो।

विश्वरथ—क्या ?

(विश्वरथ अश्रुपूर्ण नेत्रों से इस दुःखमय जन समूह को देखता है।)

विश्वरथ—ऋक्ष, इन सबको कहाँ से ले आये हो ?

ऋक्ष—(धृष्टता से) हे सूर्यदेव के लाडले कौशिक, ये सब तुम्हारी रानी के रिश्तेदार हैं। इन्हें दुष्ट तृत्सुओं ने काले खेत में गन्दे पशुओंके समान बन्द कर रखा था। मैं इन्हें छुड़ा लाया हूँ। हे महर्षि,तुल्य कौशिक, ये भूखे दुःखी, वेदनाग्रस्त दास आशापूर्ण लोगों से आपकी प्रार्थना कर रहे हैं। इनका उद्धार करो तो।

दस्यु—(पैर पकड़ कर) उद्धार कीजिये हमारा।

विश्वरथ—शाम्बरी के स्वजनो, अच्छा हुआ, तुम ठीक समय पर आ गए। (आह भरता है।) मेरी और तुम्हारी यह शाम्बरी मृत्युलोक छोड़कर चली गई।

दस्यु—(फूट-फूट कर रोते हुए) हाय, हाय, ओह अरे मेरी—उग्रा बहन ओ मेरी उग्रा बहन !

(सुरा चिल्लाकर शव पर गिर पड़ती है। सब रोते हैं।)

तृत्सु सैनिक—नायक, नायक, काले खेत में से दास छूट कर भाग आये। देखो वह देखो।

शय—काले खेत में से? कैसे? देव इन्द्र, मैं यह क्या देख रहा हूँ? (नेपथ्य में मारो, मारो, उस काले रंग वाले को।)

(प्रतर्दन, प्रतीप और थोड़े से भरत सैनिक विश्वरथ के हर्म्य के द्वार में से निकल कर मार्ग पर आ जाते हैं।)

सेनापति प्रतर्दन—प्रतीप गय, क्यों बढ़े चले आ रहे हो? क्या भरत श्रेष्ठ को मारने के लिए आ रहे हो? (अपने सैनिकों से) भरतो, भरतो, दौड़ो, अपने राजा को बचाओ।

दाहिनी ओर से हर्म्य के मार्ग से होते हुए प्रतर्दन और भरत सैनिक नंगी तलवार लेकर निकल आते हैं। विश्वरथ पर शस्त्र उठाकर बढ़ते हुए गय को देख प्रतर्दन भी धनुष पर बाण चढ़ा कर छोड़ देता है। गय बीच में ही बिंधकर भूमि पर गिर पड़ता है। ऋक्ष भूमि पर लेट जाता है और फिर हाथ और पैर के सहारे चिता के पीछे छिप जाता है।

सेनापति प्रतर्दन—दुष्ट, हमारे स्वामी पर आक्रमण करना चाहता है। यह ले, भरत श्रेष्ठ की जय।

विश्वरथ—अरे, अरे यह क्या है?

सेनापति प्रतर्दन—दुष्ट तृत्सु हमारे प्राण लेना चाहते हैं। यह तलवार लो। (एक तलवार विश्वरथ को और दूसरी जमदग्नि को देता है। विश्वरथ खिन्न बदन से खड़ा रह कर युद्ध देखता है।)

विश्वरथ—(खेदपूर्वक) जयघोष करो। तुम्हारे द्वेष का, तुम्हारी ईर्ष्या का, तुम्हारे वर्णों की जय। इस निर्दोष के रुधिर से अपना अपना आर्यपन धो लो। तुम उसके योग्य हो ही नहीं। (मारकाट चलती है।)

एक तृत्सु—(दूसरे तृत्सु से) यह है काली का शव।

विश्वरथ—(भयंकर स्वर में बीच में तलवार रखकर) चाण्डाल ! क्या मृत्यु ने पुकारा है तुझे ? (सुदास हाथ में तलवार लेकर दौड़ता हुआ आता है। वह नीचे से ऊपर तक काँप रहा है। युवराज सुदास पच्चीस वर्ष का पतला और ऊँचा युवक है।

सुदास—[ऊँचे स्वर में) तृत्सुओ ! आगे बढ़ो ! मारो इन भरतों को। निर्लज्ज कहीं के !

सेनापति प्रतर्दन—(विश्वरथ से) कौशिक, सावधान, सुदास आप पर आक्रमण करना चाहता है।

कोलाहल—ओह·····ओ·····मारो···सुदास की जय···कौशिक की जय मारो···।

(स्वर मार काट में खो जाता है।)

विश्वरथ—(भयंकर स्वर से) सुदास, रोको इनको। जो इस शव को छेड़ेगा उसके मैं प्राण ले लूँगा।

सुदास—(रोषपूर्ण होकर) शाम्बरी, शाम्बरी ! इसका एक कण तक भी न रहने दूँगा।

विश्वरथ—सुदास, क्या हम लोग इसी प्रकार परस्पर कट मरेंगे, इतने वर्षों तक साथ रहने के बाद भी ? (दिवोदास अतिथिग्व दौड़ते आते हैं। वह तृत्सुओं के वृद्ध राजा हैं।)

दिवोदास—सुदास, विश्वरथ, यह कैसी भ्रातृहत्या शुरू की है ?

सुदास—पिता जी, आप बीच में न बोलिए। इस समय मुझे कुछ न कहिए। आज या तो मैं ही नहीं रहूँगा या विश्वरथ ही नहीं रहेगा।

विश्वरथ—(भयंकर बनकर) अतिथिग्व, यदि उग्रा के शव को इसने छुआ तो मैं इसे बिना मारे नहीं छोड़ूँगा।

सुदास—मारो, मारो तुममें शक्ति हो तो ! तृत्सुओ आओ, क्या देखते हो ?

विश्वरथ—(दाँत पीसकर) लो, तो यह लो।

दिवोदास—मूर्ख, विश्वरथ तुझे अभी मार डालेगा। (सुदास विश्वरथ पर प्रहार करने बढ़ता है। दिवोदास असमंजस में पड़कर देखता रहता है। भरतों और तृत्सुओं के बीच मार-काट होती है। उस मार-काट के बीच में उग्रा का शव नदी में डाल दिया जाता है। विश्वरथ सुदास का खड्ग तोड़ देता है और उस पर कूदकर उसे जमीन पर गिरा देता है।)

विश्वरथ—अतिथिग्व, ले जाओ अपने इस पुत्र को।

दिवोदास—भाई, भाई! यह सब क्या राग छेड़ा है भ्रातृहत्या।

विश्वरथ—मैं क्या करूँ? देखो इन अपने वीरों का शौर्य। अपंग दासों की हत्या की। अब शवों को जीतने निकले हैं···

(गाँव में आग ही आग दीख पड़ती है। विश्वरथ बोलता हुआ एकदम रुक जाता है। दिवोदास का हाथ पकड़कर,) राजन्, राजन्! देखो, देखो, अग्निदेव आपके ग्राम पर नाराज हो गए हैं।

दिवोदास—(देखकर) अरे रे, ग्राम में तो आग लग गई है।

तृत्सु सैनिक—(लड़ना बन्द करके) आग!

(सुदास भूमि पर से उठकर लज्जित होकर नीचे देखता हुआ विश्वरथ की ओर द्वेष दृष्टि से घूरता हुआ चला जाता है।)

विश्वरथ—(प्रचण्ड स्वर से) प्रतर्दन, भरतो ठहरो, ठहरो। शस्त्र डाल दो। तृत्सुओं पर अग्निदेव ने कोप किया है।

(सब लड़ते हुए रुक जाते हैं। दो तृत्सु सैनिक दौड़ते हुए आते हैं।)

तृत्सु सैनिक—राजन् राजन्! दौड़िये दौड़िये। तृत्सु ग्राम जला दिया गया है। उसकी रक्षा के लिए दौड़िए।

दिवोदास—(ऊपर की ओर देखकर) देव! क्या हमें मार ही डालोगे। इतने वर्षों के बाद? (सैनिक के प्रति) जाओ हम अभी आते हैं। (विश्वरथ से) विश्वरथ, शाँत करो अपना क्रोध। क्षमा कर दो तृत्सुओं को। देवता भी तुम्हारी सहायता को आ रहे

हैं। (अग्निदेव की बढ़ती हुई लपटें देखकर) हाय-हाय क्या होने वाला है ?

विश्वरथ—(प्रेम से, निकट आकर) अतिथिग्व, तृत्सु पराये नहीं हैं ? क्या अपने कुल वालों पर कभी क्रोध हो सकता है आप निश्चिन्त रहें। मैं आ रहा हूँ। (भरतों से) भरतो ! ग्राम में चलो। (प्रतर्दन से) प्रतर्दन, क्या भरत तैयार हैं ?

प्रतर्दन—जी हाँ, क्यों ? क्या ग्राम छोड़कर चलना है ?

विश्वरथ—प्रतर्दन, तृत्सुओं पर स्वयं देवताओं ने कोप किया है। अब हमारा स्थान तो यहीं है। चलो अपने साथियों को ले आओ। हम लोग तृत्सु ग्राम की रक्षा करेंगे। राजन् आप शस्त्र लेकर चले आइये। प्रतीप, तुम और ऋक्ष यहीं रहो। दस्युओं को सम्भालकर हमारे हर्म्य में पहुँचा दो और शवों की अंतिम क्रिया की व्यवस्था करो। ऋक्ष कहाँ चला गया ? क्या है नहीं ? समाप्त तो नहीं हो गया ? और जमदग्नि, अपना पवनवेगी अश्व लेकर भरतों के ग्राम में जाओ जहाँ से भी सम्भव हो वहाँ से मनुष्य और अन्न भिजवा दो। बाप रे बाप ! कितना कोप हुआ ! ग्राम ही नया बनाना होगा। जमदग्नि, सब भिजवा दो, और महाअथर्वण को भी कहला दो और प्रतीप, यदि शाम्बरी का शव मिल जाये तो उसे सम्भालकर रखना। बेचारी दीन थी सो दीन ही रह गई। पर और न जीवित सुख पा सकी न मरे पर भी (प्रतर्दन को लेकर विश्वरथ ग्राम की ओर चला जाता है। पीछे प्रतीप के अतिरिक्त अन्य भरत जाते हैं। तृत्सु सैनिक अतिथिग्व के आस-पास आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहते हैं।)

दिवोदास—(विश्वरथ की ओर देखकर) यह मनुष्य नहीं देव है। सुदास सुदास, कहाँ गया ? (सैनिकों से) सैनिको, देखते क्या हो ?

जाओ, जाओ विश्वरथ के साथ, और उसे सहाहता करो, मैं अभी आता हूँ।

(यवनिका गिरती है।)

दूसरा प्रवेश

समय—कुछ काल बाद।

स्थान—वही।

महर्षि वसिष्ठ मुनि अगस्त्य को लेकर आते हैं। अगस्त्य की बड़ी-बड़ी आँखों में इस समय खेद है। उसका मुख चिन्ता और जागरण से अस्वस्थ है। वह भारी दिल से चल रहे हैं। धोती पहने हुए हैं, कन्धे पर दुपट्टा डाले हुए हैं, और पैरों में खड़ाऊँ पहने हैं। पीछे छिपा हुआ ऋक्ष बाहर निकलकर चुपचाप चिता पर आसन जमाये बैठता है।

वसिष्ट—(कटुता से) देखो, मैत्रावरुण, देवों का कोप! हमारा वर्षों का किया कराया सब कुछ मिट्टी में मिला दिया है। आर्यों और दस्युओं के मिल कर बहते हुए रक्त से भगवती सरस्वती का जल अपवित्र हो रहा है। शम्बर कन्या के शव स्पर्श से अगस्त्य का पुण्यतीर्थ दूषित हो गया है और पच्चीस बरसों के प्रयत्न से उज्ज्वल बना हुआ तृत्सु ग्राम जलकर भस्म हो रहा है। ऋत-प्रिय देव उपचार कब तक सहन कर सकते हैं।

(ऋक्ष सिर धुनता है और इस प्रकार गम्भीर तथा अपार्थिव स्वर में बोलता है मानो मन्त्र पढ़ता हो।)

ऋक्ष—हे मुनिवर्य! ऋषि लोपामुद्रा जो कहती हैं वह सत्य है। हम अपने अभिमान के कारण यह भी नहीं पहचान रहे हैं कि ऋत क्या है? (दोनों ऋषि चौंक कर पीछे देखते हैं।)

वसिष्ट—कौन दुर्दमन का पुत्र?

ऋक्ष—जी हाँ, मैं हूँ दुर्दमन का पुत्र। मुनिवर! आपके अभिमान से

प्रेरित होकर आपके शिष्यों ने मेरे शिष्यों का विना कारण विनाश किया है।

अगस्त्य—तेरे शिष्य ?

ऋक्ष—हे मैत्रावरुण के प्रतापी पुत्र, जिसका तृत्सुओं ने संहार किया जिनकी लाश यह सरस्वती बहाए लिए जा रही है, वे सब मेरे शिष्य थे।

वसिष्ठ—ये दस्यु तेरे शिष्य कब से हो गये। क्या कहीं तेरा माथा घूम गया है।

ऋक्ष—(निर्लज्जता से) हे तृत्सुओं के पुरोहित ! ऋषियों के आचार से पतित होकर असभ्य भाषा का उच्चारण मत करो। हे मुनिवर्य, यह सब जन्म से दस्यु थे, यह सच है किन्तु मैंने वरुण इन्द्र, सूर्य, अग्नि और आदित्यों के साथ देवताओं का आवाहन किया। उन सबने उपस्थित होकर मेरे इन शिष्यों को विशुद्ध किया तो और मैंने उन्हें आर्य बनाया।

वसिष्ठ—अच्छा।

ऋक्ष—और हे ऋषि वसिष्ठ आपके दुर्बुद्धियुक्त तृत्सुओं ने इन्हें मारा, घायल किया, डुबो दिया। मेरा अगस्त्य और लोपामुद्रा के इस शिष्य का, ऋषि ऋक्ष का तुम तृत्सुओं पर शाप है। दीन-निरीह गौ के समान मेरी सन्तान का विशान ! (उच्च स्वर में) देव ! देव ! इन्द्र ! आओ और अपने वज्र से इन अभिमानियों का संहार करो।

अगस्त्य—यह अभी तक मूर्ख था। पर आज तो इसके भाषण में मुझे गहरा अर्थ दिखाई दे रहा है।

वसिष्ठ—मैत्रावरुण, यह लोपामुद्रा अपने विश्वरथ जैसे न जाने कितने और वृत्रासुर से भी भयंकर शिष्य उत्पन्न करेगी।

अगस्त्य—ऋक्ष ने अभी जो उस साध्वी के वचन कहे वे क्या झूठ हैं ?

हम अपने ही अभिमान के कारण ऋक्ष को नहीं पहचान पा रहे हैं।

वसिष्ठ—मैत्रावरुणि, मैंने आज तक सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा है और आज भी नहीं कहूँगा। जिसके वचन आपके हृदय में घर किए हुए हैं उसने क्या क्या किया है वह आप भी नहीं समझ सकते। वह आई और विश्वरथ पागल हुआ, आप तपोभ्रष्ट हुए। सप्तसिन्धु को एक करने के लिए आपने वर्षों तक प्रयत्न किये। किन्तु जब वह एक हो रहा था, उसी समय उसके खण्ड-खण्ड करने की उसने आपको प्रेरणा दी। आज उसने दासों को आर्य बनाने का रहस्य भरतों के हाथ में देकर आर्यों की विशुद्धि का संहार किया है। क्या उसके कृत्यों को देखकर अभी आपकी आँखें नहीं खुलीं?

अगस्त्य—नहीं। अभी हमें उसके बहुत से कृत्य देखने हैं और यदि देव की कृपा रही तो बहुतों में भागी भी बनना होगा।

वसिष्ठ—तो भाई, अपने वशिष्ठ का संकल्प सुन लो—भारद्वाजी लोपामुद्रा द्वारा फैलाया हुआ यह विष यदि मेरी तपस्या से नहीं उतरा तो मैं प्राण दे दूँगा। और अब से जहाँ वह रहेगी वहाँ मैं नहीं रहूँगा, जहाँ मैं रहूँगा वहाँ वह नहीं रहेगी।

अगस्त्य—वसिष्ठ, क्या तुम भी विवेक खो बैठे हो? वह वहाँ नहीं रहेगी इसलिए तुम्हारे मार्ग में बाधा नहीं देगी। किन्तु जहाँ वह रहेगी वहाँ मैं रहूँगा, यह तो तय है।

वसिष्ठ—अच्छी बात है मैं तो चला जाता हूँ। मुझे यह सब कुछ नहीं चाहिए। देव! देव! अब तो तृत्सुओं पर दया करो।

अगस्त्य—(शव दिखाकर) मैं जानता था कि यह अत्याचार देव न सहन कर पायेंगे।

वसिष्ठ—(स्थिरता से देखकर) मुझे भी विश्वास था। यह अत्याचार देव सहन नहीं कर सकते।

(चले जाते हैं।)

(अगस्त्य एक पत्थर पर बैठे हैं और धीरे-धीरे विचारमग्न होकर बोलने लगते हैं।)

अगस्त्य—क्या वशिष्ट सत्य कहते हैं ? क्या मेरा किया-कराया समाप्त हो गया ? मैंने सप्तसिन्धु की एकता साधने के लिए जीवन समर्पित किया। पर आज देख रहा हूँ, घर-घर वैमनस्य छाया हुआ है। मेरी समझ में सत्य कहाँ से आ सकता है ? आज जब मेरा सोचा हुआ न हो सका—अभिमान दब गया, किया-कराया धूल में मिल गया, तब दीनता आई है। जब तक मैं अभिमानी पुरोहित था तब तक दीनता कहाँ से आ सकती थी ?···दीनता मुझे दिव्य चक्षु प्रदान करती है। मैं कल विश्वरथ को नहीं समझ सका, आज उसे समझता हूँ। शाम्बरी ने उसे स्नेह दिया दस्युओं में उसे आर्यत्व दिखाई दिया और उसके लिए उसने भरतकुल का राज्य, गुरू और जीवन का मोह सब छोड़ दिया। मेरी लोपामुद्रा, यह दिव्य-दृष्टि तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई ?·····और तुम मुझे कहाँ से मिलीं।

(गय का आठ वर्ष का रूपवान पुत्र शक्ति और उसी अवस्था की एक दस्यु कन्या, काली दौड़े आते हैं। शक्ति चिल्लाकर रोता है। काली उसे भय से हाथ पकड़कर खींचती है।)

शक्ति—हाँ, माँ (रोता है।) ओह ? अग्नि आये···(चारों ओर देख कर काँपता है।)

काली—(गले लगाकर) चुप रहो, (हाथ से शक्ति की आँखें पोंछती है।)

अगस्त्य—(स्वगत) आर्यबटु और दस्यु-कन्या। अग्निदेव ने दोनों को एक कर दिया।

शक्ति—(रोता है।) ओ, माँ ! माँ ! ओ पिता जी ! (बैठना चाहता

है ।) वहाँ पर पड़े हुए गय नायक के शव पर उसकी दृष्टि पड़ती है । वह दौड़कर उससे लिपट जाता है, (वह नीचे सिर करके रोता है ।) पिताजी ! गय नायक ! पिताजी ! उठिए मेरी माँ जल गई···।

काली—(पीछे आकर शव को देखती है और हाथ पकड़कर शक्ति को उठाकर दूर ले जाती है ।) नहीं नहीं नहीं, उग्रकाल के चरणों में ।

शक्ति—नहीं, मेरे पिता जी मुझे छोड़ कर चले गये ।

काली—(शक्ति को गले लगा कर जाने नहीं देती ।) मैं जानती हूँ, पहचानती हूँ, मेरी माता को इन्होंने ही मारा और मुझे भी पकड़कर पर—गये—उड़ गये उग्रकाल गये । (दोनों हाथ से 'उड़ गया' का संकेत करती है ।)

शक्ति—(रोते हुए) माँ गई पिता भी गये । ओ मेरे पिता जी ! दहाड़ मारकर रोता है । काली उसके सिर पर हाथ फेर कर अपनी गोद में सुलाती है । पीछे अगस्त्य खड़े-खड़े आँसू पोंछते हैं ।)

अगस्त्य—(स्वगत) अगस्त्य ! मूर्ख ! (कटुता से) तुम मानते थे कि दस्युओं के विनाश में आर्यों का उद्धार है । लोपामुद्रा यदि इस समय होती तो कितना अच्छा होता ?

(विचार में मग्न होकर दोनों बालकों को देखते हैं अगस्त्य की कन्या रोहिणी भावपूर्वक आती है ।)

रोहिणी—पिता जी ! पिता जी !

अगस्त्य—क्यों बेटी ?

रोहिणी—तब से कहाँ थे ? भगवती बुलाती हैं । मैंने सोचा आप ग्राम में गये होंगे । यह तो ऋक्ष ने बताया कि आप यहाँ हैं ।

अगस्त्य —बेटी, यहाँ से हटना मुझे अच्छा नहीं लगता । यहाँ विनिष्ट दस्यु-प्रजा के शव पड़े हैं । द्वेष और अभिमान में भ्रातृहत्या करने वाले आर्य भी यहीं पड़े हैं और देखो ! देखो ! मनुष्य

और देव के कोप ने इन्हें आर्य बना दिया है, यह भी मैं यहीं देख रहा हूँ।

रोहिणी—पर पिता जी आश्रम में तो चलिए। विश्वरथ ने तो मुझे पागल बना दिया है।

अगस्त्य—क्यों ?

रोहिणी—जले हुओं और घायलों को वे हमारे आश्रम में मेरे लिए भी भेज रहे हैं।

अगस्त्य—(प्रसन्न होकर) रोहिणी, हर्ष मनाओ, उत्सव करो। आज वह तृत्सुओं का पिता बन रहा है, और तुझे उनकी माता बता रहा है। (हँसकर रोहिणी के गाल पर धीरे से चपत लगाता है। रोहिणी लज्जित होकर नीचे देखती है।) जो होता है वह अच्छे के लिए अरे यह क्या, यों रोहिणी ?

(पागल बनी हुई गायों का कुछ झुँड दौड़ता हुआ आता है, और, और इधर-उधर मार्ग खोजकर आश्रम मार्ग पर चल पड़ता है। अगस्त्य बीच में आकर शक्ति और काली को उठा लेता हैं। रोहिणी के साथ वे हर्म्य की पैड़ियों पर चढ़ जाते हैं।)

शक्ति और काली—(भयभीत होकर रोते हैं।) ओ—ओ !

अगस्त्य—घबराओ मत।

(रोहिणी के हाथ में काली को सौंप देते हैं। इतने में एक आर्य दौड़ता हुआ आता है और फिसलकर गिर जाता है। पीछे एक दस्यु दौड़ता हुआ आता है और गिरे हुए आर्य पर सख्त चोट करता है।)

दस्यु—ले ! उग्रकाल प्रसन्न ! ले !

अगस्त्य—अरे दुष्ट !

(चार तृत्सु और पाँच-छः दस्यु परस्पर मारो-चिल्लाते, लड़ते झगड़ते आते हैं। एक आर्य उनमें से एक दस्यु को भूमि पर गिरा देता है और उसका गला दबाता है।)

अलग-अलग स्वर—चाण्डाल···पापी···काले···लेता जा (मार पीट ? होती है।)

अगस्त्य—(शक्ति को रोहिणी के हाथ सौंप कर) क्या करते हो पापियो नीचे उतरने के लिए घूमते हैं। विश्वरथ और छः भरत आगे बढ़ आते हैं। प्रत्येक के हाथ में कोई-न-कोई शस्त्र है।)

विश्वरथ—(ऊँचे स्वर से) शान्त होते हो या नहीं ? (मार पीट में उसे कोई सुनता नहीं।) भरतो, पकड़ो, मारो, बाँधो इन दुष्टों को। (सब भरत सहसा तृत्सुओं और दस्युओं पर टूट पड़ते हैं शस्त्र उठाकर उन्हें भूमि पर पटक उनकी छाती पर शस्त्र रखते हैं।)

अगस्त्य—(क्रोध से) तुम भी पागल हो गए हो ? (विश्वरथ अगस्त्य के पंजे से छूटकर अट्टहास करता है।)

विश्वरथ—(विजयोल्लास-भरे स्वर से) गुरुवर्य, जब सभी पागल हैं तब एक अधिक हो जाए तो क्या हुआ ? (तृत्सुओं और दस्युओं को पकड़े खड़े भरतों से) भरतो, दस्युओं को अपने हर्म्य में ले जाकर वृक को सौंप दो। तृत्सुओं को राजा दिवोदास को सौंप आओ। उनके पास ऐसे बहुत से पागल एकत्र हुए होंगे।

भरत—जैसी आज्ञा। (तृत्सुओं व दस्युओं को ले जाते हैं।)

अगस्त्य—(प्रेम और प्रशंसा से देखकर) वत्स, समझा, अब समझा। (विश्वरथ के कंधे पर हाथ रखता है। रोहिणी बच्चों को ले कर नीचे उतरती है।)

विश्वरथ—चाहे जैसा हूँ पर हूँ तो आपका ही शिष्य ! क्यों रोहिणी, गुरुदेव क्रोध तो नहीं करेंगे न।

अगस्त्य—पुत्र, विजय प्राप्त करो।

(यवनिका पात)

तीसरा अंक

स्थान—वही

समय—दो मास पश्चात् ।

(मध्य रात्रि होने आई है । विश्वरथ के हर्म्य में आनन्दोत्सव मनाए जाने की ध्वनि आती है । उसमें आग भी जलती दिखाई देती है । विश्वरथ और रोहिणी का विवाह हो रहा है । किसी समय मन्त्रोच्चार और किसी समय हँसने का स्वर हर्म्य में आता है । मृदंग की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ।)

ग्राम में से दो आर्य और पाँच आर्याएँ अच्छे वस्त्राभूषण धारण करके हँसते और कल्लोलें करती हुई आती हैं । आगे-आगे एक लूकधारी चलता है । ये सब हर्म्य में शीघ्रता से प्रवेश कर जाते हैं ।

ऋक्ष आता है, वह मदमस्त है । चारों ओर देखता हुआ अपने विचारों में मस्त होकर वह दस्युओं के समान नाचने लगता है ।

ऋक्ष—ई-ई-ऊ-ऊ—

(वृक सामने से आता है और रुक जाता है ।)

वृक—अरे ऋक्ष, ऋक्ष, यह क्या करते हो ? क्या इस शुभ प्रसंग पर कोई विघ्न खड़ा करने आये हो ?

ऋक्ष—विघ्न, विघ्न विघ्नों का नाश करने वाले हम बैठे हैं तो ? हमारे शिष्य आज भी आनन्द न मनायें···विश्वरथ जैसे का विवाह होता हो तब भी ?

वृक—क्या करने जा रहे हो ?

ऋक्ष—मेरे शिष्य अपनी इच्छानुसार आनन्द मनाएँ यही आज्ञा लेने जा रहा हूँ।

वृक—किन्तु यदि राजा दिवोदास रुष्ट हुए तो ?

ऋक्ष—जाओ, जाओ। विश्वरथ से कह दे उन्हें पूछता कौन है ? दिवोदास ? ऊँह ! ऊँ !

वृक—और भगवान् वसिष्ठ ?

ऋक्ष—अरे, उनकी तो हम चिन्ता ही कहाँ करते हैं ? अच्छा उनसे पूछ लेना ठीक होगा। (विचार करके) आनन्द आयेगा। (तीन स्त्रियाँ विभिन्न रंग के वस्त्र धारण करके तालियाँ बजाती हुई चलती हैं। आगे एक लूकधारी चलता है स्त्रियाँ ऋक्ष को नशे में देखकर मुँह बनाती हुई हर्म्य की ओर चली जाती हैं।) क्यों, इधर भी आँख क्यों नहीं घुमाते ?

(सब ठहाका मारकर ऊपर दौड़ जाती हैं। वृक भी जाता है। गौतम और अन्य दो तृत्सु मघवन आते हैं। उनके साथ में लूकधारी है वे दूर से ऋक्ष को नमस्कार करते हैं।)

गौतम मघवन—कहो कैसे हो ? आनन्द में तो हो ?

ऋक्ष—हाँ, हम आनन्द में हैं ! हमारे तप की वृद्धि ही हुआ करती है।

दूसरा तृत्सु मघवन—यह तो आपको देखने से स्पष्ट होता है। पर यह क्या ? हमने सुना है कि कौशिक बस कल ही तृत्सुग्राम से विदा होने वाले हैं। क्या यह सच है ?

ऋक्ष—पूछो अपने दिवोदास, और उससे भी अधिक विद्वान उसके पुत्र सुदास से। आज संध्या समय ही कुछ बातें पक्की कर आये हैं। विश्वरथ और हम सबको क्या एकदम तड़के ही निकाल देंगे। (तिरस्कार से) धिक्कार है। (ताव से) तुम्हें अग्नि और दस्युओं से बचाया, तुम्हारे घर खड़े कर दिये, और अब जब काम निकल गया तो चलो बाहर जाओ—धिक्कार है ! धिक्कार है तुम कृतघ्नों को !

तीसरा तृत्सु मघवन—(दूसरे से) सुना ? हमारे कौशिक हमारे अपने गाँव जा रहे हैं ?

दूसरा तृत्सु मघवन—(उग्रता से) यों कहो न कि कौशिक को हमारे राजा गाँव के बाहर निकल रहे हैं ?

तीसरा तृत्सु मघवन—यह बात सच है। मैंने भी सुना है। कहते हैं कि युवराज···

दूसरा तृत्सु मघवन—हाँ-हाँ, पक्की बात है। उसने कहा कि तुमने धन दिया और धेनुएँ दीं, हमारे दास तुमने बदले में लिए। उसका लेखा लगा लो। जो कुछ हिसाब निकले वह लो और जाओ।

तीसरा तृत्सु मघवन—ऐसे मंगल प्रसंग पर भी उसकी जीभ चुप नहीं रही।

गौतम मघवन—जब वह छोटा था तभी से वह विश्वरथ से जलता है। एक बार उसे डुबाने की कोशिश भी तो उसी ने की थी।

(स्त्री पुरुषों की टोली आनन्द मनाती हुई आती है। सब एक-दूसरे को नमस्कार करते हैं। आने वाले नये हर्म्य में जाते हैं। साथ में गिरता पड़ता ऋक्ष भी थोडी दूर तक जाता है और एक लड़की को छूता है तो वह उसे धक्का देती है।)

तीसरा तृत्सु मघवन—अरे जाने दे न ! कोई सुन लेगा।

दूसरा तृत्सु मघवन—सुनेगा तो क्या होगा ? आज कौशिक न होते तो न जाने कितने तृत्सु घर के बाहर पड़े होते और कितनों की धेनुएँ हरी जातीं ! जानते हो कितने तृत्सुओं को उसने जलने से बचाया, कितनों के घर बँधवा दिए, कितनों के जले हुये धान्य की भरपाई कर दी ? आज वे न होते तो···और विवाह

के प्रसंग पर इस बेचारे को और सबको रुष्ट किया !

तीसरा तृत्सु मघवन—इसी को कहते हैं बीज भूनकर बोना।

गौतम मघवन—और हम तृत्सु भी तो भरत ही हैं न ? उन्होंने क्या हम लोगों को कभी दो समझा है। नहीं तो ये भरतों के राजा हमारे यहाँ आकर रहते ही किस लिये ?

दूसरा तृत्सु मघवन—(गौतम से) तुम्हारे जैसे मघवन जब कुछ बोलेंगे ही नहीं तब और होगा क्या ? तृत्सुओं में कृतज्ञता तो नाममात्र को ही रह गई है। विश्वरथ को चले जाने दो, फिर देखना तुम्हारा क्या तेज रहता है।

तीसरा तृत्सु मघवन—भाई, दिवोदास राजा है। जो करे सो ठीक है।

दूसरा तृत्सु मघवन—राजा है इसलिए चाहे जो करे ? वाह !

तीसरा तृत्सु मघवन—अरे सम्भलकर धीरे-धीरे बातचीत करो, कोई सुन लेगा तो।

दूसरा तृत्सु मघवन—मुझ पर किसी के बाप की धौंस तो नहीं। बहुत होगा तो मैं भरतग्राम में जाकर रह लूँगा।

गौतम मघवन—क्या कहते हो ? अपने लोगों को छोड़कर भी कहीं जाया जाता है ?

तीसरा तृत्सु मघवन—देखो, देखो, भगवान मैत्रावरुणि आ रहे हैं।

दूसरा तृत्सु मघवन—(पहले के प्रति) मघवन, साहस हो तो कहो भगवान से। नहीं तो मैं कहूँ ? फिर मत कहना कि संभलकर नहीं बोलता।

(अगस्त्य अपने हर्म्य की ओर से आते हैं। आगे एक शिष्य लेकर चलता है।)

तृत्सु मघवन—पधारिए गुरुदेव !

अगस्त्य—शत शरद जियो वत्सो ! कहो, कैसे हो मघवनो ? आनन्द ही है, क्यों ? (पहले तृत्सु से) तुम्हारा दौहित्र अब कैसा है ?

गौतम मघवन—जी, वह तो सिंह जैसा है—आपकी कृपा से कौशिक का युवराज बन बैठा है।

अगस्त्य—भाग्यवान है न ? माता-पिता तो मर गए पर ऐसे योग्य माता पिता के हाथ में सौंप गए। चलो चलते हो न ?

गौतम मघवन—(प्रसन्न होकर) कौशिक उसके पिता की अपेक्षा शक्ति की अधिक संभाल रखते हैं।

दूसरा सघवन—(पहले तृत्सु से) क्या ?

गौतम मघवन—चलिए। पर भगवन्, आज इस मंगल प्रसंग पर यह क्या आपत्ति आ गई है ?

अगस्त्य—विपत्ति ? कौन-सी विपत्ति ?

गौतम मघवन—गुरुवर्य, हमारे यह कौशिक ग्राम छोड़कर चले जाएँ इससे बढ़कर और कौन-सी विपत्ति हो सकती है ?

अगस्त्य—(आश्चर्यचकित होकर) विश्वरथ कहाँ जाएँगे ?

गौतम—क्या आप नहीं जानते ? कल प्रातः विश्वरथ अपने भरतों को साथ ले कर भरत ग्राम के लिए प्रस्थान करने वाले हैं।

गौतम मघवन—पूरा गांव कहता है। किसी ने कौशिक के मुँह से सुना। किसी ने युवराज सुदास के मुँह से सुना। (अगस्त्य ओंठ चबाकर भ्रूभंग करके खड़े रहते हैं। तीनों तृत्सु देखते रहते हैं।)

अगस्त्य—कब निश्चित हुआ ?

गौतम मघवन—मैं क्या जानूँ ?

दूसरा तृत्सु मघवन—अरे भगवान् के लिए सच कह दो न ! (अगस्त्य से) भगवन्, हमने विश्वस्त सूत्र से सुना है कि थोड़े दिन पहले राजा दिवोदास ने कौशिक को

बुलवाया और कहा कि तुमने तृत्सुओं के लिए घर बनवाए और धेनुओं के लिए जो धान्य दिया उनका मूल्य ले लो।

अगस्त्य—(चौंककर) क्या ?

गौतम मघवन—हाँ, भगवन और कहा कि तुम जो हमारे दास ले गए हो उनका मूल्य दे दो और विवाह होने के बाद चले जाओ।

अगस्त्य—(क्रोध में) अच्छा, फिर ?

गौतम मघवन—फिर क्या ? विश्वरथ ने निश्चय कर लिया कि सूर्योदय के समय चले जायेंगे।

अगस्त्य—यह है तुम्हारी विवाहोत्सव मनाने की रीति ?

दूसरा तृत्सु मघवन—हमारी रीति ? हमारी अपेक्षा तो कुत्ते अच्छे ? जिसका खायें उसे तो न काटें।

गौतम मघवन—हमारा तो रक्त खौलता है।

अगस्त्य—क्या विश्वरथ ने लेखा लगाया है ?

दूसरा तृत्सु मघवन—लेखा ? वह तो देवता है। कहा कि आप स्वतः लेखा लगा लें और जो बचे वह तृत्सुओं में बाँट लें। मैंने दुष्ट पक्षियों का धन्धा प्रारम्भ नहीं किया है; लेखा लगा कर ब्याज गिनना आर्य का काम नहीं है·····(बोलते-बोलते आवेश आ जाने से अटकता है।)

गौतम मघवन—(दूसरे तृत्सु से) अरे कितना आवेश में आ गया है ?

तीसरा तृत्सु मघवन—भगवान् आप ही बताइये। आवेश न आये तो क्या हो ? हमारी माँ-बहनें तो अभी से आँसू बहा रही हैं। कौशिक का विवाह न हो रहा होता तो हम लोग युवराज के हर्म्य में जाकर कांड मचा आते।

(शंखनाद होता है।)

तीसरा तृत्सु मधवन—जान पड़ता है राजा दिवोदास और युवराज आ आ रहे हैं।

अगस्त्य—तुम लोग जाओ, विवाहोत्सव का आनन्द लूटो। सब ठीक हो जायेगा।

(तीनों तृत्सु जाते हैं। राजा दिवोदास, युवराज सुदास और वसिष्ठ आश्रम की ओर से आते हैं। वसिष्ठ अत्यन्त गम्भीर हैं और मौन धारण करके खड़े रहते हैं। दिवोदास रुग्ण जान पड़ते हैं। वे लकड़ी के सहारे चल रहे हैं और बोलते-बोलते थक जाते हैं।)

वशिष्ठ, दिवोदास, सुदास—प्रणाम भगवन्! नमस्कार!

अगस्त्य—(हाथ बढ़ाकर) शत-शत जियो राजन्! (कड़ाई से) मैं यह क्या सुन रहा हूँ?

दिवोदास—(घबराकर) क्या? क्या?

अगस्त्य—(सुदास की ओर देख कर) विश्वरथ को तुमने तृत्सुग्राम से निकाल दिया है?

दिवोदास—नहीं तो। (रुकता है।)

अगस्त्य—जानते हो वह कल जा रहा है?

दिवोदास—(घबराकर) जी हाँ, सुदास से ही पूछिये।

अगस्त्य—सुदास तो बालक है, उससे क्या पूछूँ? मैंने और विश्वरथ ने जो कुछ किया है क्या उसका यही पुरस्कार है, अतिथिग्व?

सुदास—(बात काटकर) गुरुवर्य!

अगस्त्य—तुम में तो कृतज्ञता भी नहीं है युवराज! तुम तो जन्म से ही ईर्ष्यालु हो। विश्वरथ ने नया ग्राम बसाया, निर्धन तृत्सुओं को धनवान् बनाया, रुग्ण भटके हुओं को जीवन-दान दिया, जले हुए कोठों में धन-धान्य भर दिया और क्या चाहिए? क्या चाहिये तुम्हें?

सुदास—(आकुल होकर) क्या चाहिये और पूछिये उसी से ! और क्या चाहिए ? उसके कारण भगवान वसिष्ठ ने पुरोहित-पद छोड़ दिया है । आप और भगवती तो उसके पिता-माता हैं । तृत्सु भी उसके पीछे पागल हो गए हैं । हमारे योद्धा लोग भी जकर प्रतर्दन से शस्त्र-विद्या सीखने लग गये हैं । अब हम का ग्राम से बाहर निकलना भर बचा है ।

दिवोदास—(असहाय अवस्था में) मैत्रावरुण, मैं तो अब निर्बल हो रहा हूँ, और सुदास हठ पकड़ बैठा है । क्या करूँ ?

अगस्त्य—(ओंठ चबाकर, क्रोध से यह बात है ? जानते हो भरत और तृत्सुओं को एक करने के लिए तुम्हारे पिता ने और मैंने जीवन बिता दिया । और जब वे एक हुए तो तुम उन्हें अलग-अलग करने पर उतारू हुए हो ।

दिवोदास—मैं क्या करूँ ? मैं तो वृद्ध हो गया हूँ । कल आँखें मूँद लूँगा, तब तो जो है सुदास को ही संभालना होगा न !

अगस्त्य—सम्भालने वाला तो वज्रधारी इन्द्र हैं । (सुदास से) क्या तुमने यह सोचकर चाल चली है कि मैं तृत्सुग्राम छोड़कर जाने वाला हूँ ? धन्य है तुम्हें सुदास ! यह मंगल अवसर है, याद रखो कि जो भी भरतो से वैर बढ़ायेगा उसे मुझसे निपटना पड़ेगा । समझे ?

(सब एक साथ हर्म्य में जाने के लिए घूमते हैं । ऋक्ष सामने आकर अगस्त्य को प्रणाम करता है ।

ऋक्ष—हे गुरुदेव ! ऋषि मैत्रावरुण !

अगस्त्य—क्यों ? क्या है ?

ऋक्ष—आज मेरे शिष्य अर्थात दस्यु लोग नृत्य करके उत्सव की शोभा बढ़ाना चाहते हैं । (हँस कर) कहिये भगवन् आपकी क्या आज्ञा है ?

अगस्त्य—विश्वरथ क्या कहता है ।

ऋक्ष—आपकी अनुमति हो तो उनकी भी अनुमति है ।

अगस्त्य—तो मैं अनुमति देता हूँ ।

ऋक्ष—(वसिष्ठ से आडम्बरपूर्ण नम्रता के साथ) हे मुनिवर्य, यदि दास लोग नृत्य करें उसमें आपको आपत्ति तो नहीं है न !

वसिष्ठ—(तिरस्कार से) भगवान मैत्रावरुण की आज्ञा ही मेरी आज्ञा है।

ऋक्ष—(कूदकर) चलो । दोनों महर्षियों की आज्ञा मिल गई । ई... ई...ऊ...ऊ...

अगस्त्य—चलो । (ऋक्ष के अतिरिक्त सब हर्म्य में चले जाते हैं । ऋक्ष मार्ग में खड़ा-खड़ा हँसता है । वृक हर्म्य में से निकल कर आश्रम की ओर जाने के लिए घूमता है ।)

ऋक्ष—देखो वृक ! सबको ले आओ । मेरी सुरा से कहना कि जल्दी आये । भगवान मैत्रावरुण, भगवती लोपामुद्रा, मुनि वसिष्ठ और विश्वामित्र कौशिक चारों ने आज्ञा दे दी है । शम्बर के गढ़ में जिस प्रकार उत्सव मनात थे, उसी प्रकार यहाँ भी दस्युगण मनायें । आज वे आर्य बन गए हैं । जाओ ये ऋषी ऋक्ष के वचन हैं । क्यों तुम्हें हम पर श्रद्धा ही नहीं है ।

वृक—भाई वह दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है ।

ऋक्ष—(अभिमान से) तुम हमें भाई न कहो वृक ! भगवान न कहो तो न सही, पर हदि तुम मुझे ऋषि नहीं कहोगे तो अच्छा न होगा । फिर तुम्हारे सब लोग—समझे ? सुनो तैयार हो कर सब इस पेड़ के नीचे खड़े रहें । सप्तपशी के होते ही नाचने लगेंगे । सुरा की न भूलना । समझे हम अपने शिष्यों को छोड़ नहीं सकते (तीन आर्य स्त्रियाँ हर्म्य की ओर जाती हैं । ऋक्ष इन तीनों की ओर हँसता हुआ देखता है । वे सुदास के करतूतों की चर्चा करती हुई चली जाती हैं, थोड़ी देर

में विवाह समाप्ति के स्वर सुनाई देते हैं। ऋक्ष एक ओर जाकर चिल्लाता है। छिपे हुए दस्यु स्त्री पुरुष हँसते हुए आते हैं। हर एक ने पैरों में घुंघरू बाँधे हैं और कमर में ढोलक बाँधी है। वृक ढोलक और घुंघरू लाकर ऋक्ष को देता है और स्वतः भी ये सब बाँध लेता है। नाचना आरम्भ होता है। बीच में ऋक्ष घूमता है। यह शब्द सुनकर सब हर्म्य में से निकलकर दस्युओं का नाच देखते हैं आगे विश्वरथ है। उसने फूलों के हार और सुवर्ण के अलंकार धारण किये हैं। वह धीरे-धीरे ढाल पर उतरकर हँसता हुआ खड़ा रहता है।) विश्वरथ—(सबको उठाकर) ऋक्ष भाइयों. उठो, उठो, मैं उग्रकाल नहीं हूँ। तुम्हारा विश्वामित्र हूं। अन्दर आओ। गुरुदेव, आज्ञा है न ?

अगस्त्य—(ओसारे में से ही) हाँ वत्स !

भरत दस्यु, तृत्सु—मैत्रावरुण की जय ! विश्वामित्र कौशिक की जय ! केवल वसिष्ठ सबके पीछे रह जाते हैं और फिर सिर नीचा करके धीरे-धीरे मार्ग से हटकर किनारे पर चले आते हैं। थोड़ी देर तक नीचे देखकर पीछे हटते हैं। काली हँसती हुई दौड़ती हुई आती है। पीछे शक्ति भी हँसता-हँसता दौड़ता है। खेल में अपने को भूले हुए ये दोनों वसिष्ठ से टकराकर भूमि पर गिर पड़ते है। वसिष्ठ बड़ी कठोर दृष्टि से देखने लगते हैं। दोनों झूठमूठ रोते हैं।)

शक्ति—(वसिष्ठ को पहचानकर और घबराकर पैर छूता है।) भगवान्, भूल हुई, इस काली ने मुझे गिरा दिया। अरी ओ पैर पड़ ये तो भगवान हैं।

काली—(हाथ जोड़ती है।) भगवान् !

वसिष्ठ—(कठोरतापूर्वक शक्ति से) क्यों शक्ति, तू गय नायक का पुत्र

है न ? क्यों रे ? क्यों रे ?

शक्ति—जी हाँ ।

वसिष्ठ—और यह क्या वही लड़की है जिसने तुझे जलते घर में से निकाला था ?

काली—(हँसकर ताव से) हाँ, मेरा नाम काली है । मैं भी आपके शक्ति की सखी हूँ । (प्रसन्न होकर) हम रोज उस पेड़ पर चढ़कर बैठते हैं, और वह नित्य मुझे ऊपर चढ़ाता है और मैं उसे गिरा देती हूँ । (हँसती है, पर वसिष्ठ की मुखमुद्रा देखकर चुप हो जाती है । वसिष्ठ दूर चले जाते हैं बच्चे घबराकर देखते हैं और फिर धीरे-धीरे डरते-डरते हर्म्य में चले जाते हैं ।)

वशिष्ठ—(स्वागत) वसिष्ठ तू ऊपर चढ़ना चाहता है और दस्यु कन्या मुझे नीचे गिराती जा रही है । ठीक ही बात है । जिस समय विशुद्धि की जड़ उखड़ रही है । तब विद्या और तप क्या कर सकते हैं ? (जाते हुए बच्चों की ओर देखकर) ये आगामी कल के माता-पिता आर्य वंशजों के पितर ! इनकी सन्तान अगस्त्य और वशिष्ठ की सन्तानें कहलाएँगी और उस समय आर्य लोगों के समान गौरवर्णी न होकर काले रंग के हो जायेंगे । तब आर्यों की सन्तान विभूति—सत्य और ऋत—सब का लोप हो जाएगा । तब उग्रदेव वरुण और इन्द्र सिंहासन पर बैठेंगे । (गद्‌गद् कण्ठ से) देव ! देवाधिदेव ! मुझसे यह नहीं सहा जाता । तपश्चर्या, विद्या का सेवन और दान ये शुद्धि अकुशाक्षण के निर्मित अभ्यास विग्रह, सभी निरर्थक हो गए । निष्फलता सामने आकर खड़ी है—वृक्ष तुल्य विकराल दैव ! इस समय आपने मुझे छोड़ दिया ?···मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है । देवी ! वशिष्ठो ! पितरो ! आशाविहीन अन्धकार मुझे मौन कर रहा है । जो स्पष्ट था वह

अंधकारमय हो रहा है। मैं निराधार फँस गया हूँ। कोई तो मार्ग दिखाओ ? नहीं-नहीं मैं शुद्ध हूँ। सप्तसिन्धु में भले ही प्रलय हो पर मुझे क्या ? वशिष्ठ और विशुद्धि पृथक कैसे हो सकते हैं ?···जिसके लिए जीवित हूँ वही सत्य है। यह आश्रम, प्रतिष्ठा और देह तो केवल उस विशुद्धि की छाया है। छाया के बिना वस्तु रह सकती है पर वस्तु के बिना छाया कैसे रह सकती है ? जब तप का बीच तपता है तब सत्य अकेला छाया के बिना रहता है जब वह अस्त होता है तब केवल लम्बी छाया है—सत्य को पाना कठिन हो जाता है। मेरा तप नहीं, नहीं वशिष्ठ तो सदा विशुद्ध है—मन, वाणी, कर्म से। (निश्चयपूर्वक) तेरा तप मध्यान्ह में है। छाया, जा लुप्त हो जा ! वसिष्ठ, तू आर्यों की निर्बलता का सनातन ज्योति-स्तम्भ है। (सरस्वती की ओर देखता है।) भाई को कुछ कहना निरर्थक है।···साध्वी को भी क्यों कहा जाय ? उसकी पति-भक्ति यदि मध्यान्ह में होगी तो वह भी छाया को छोड़कर निर्मल स्वरूप में चमकेगी—मुझे खोजती हुई चली आएगी।···माँ सरस्वती ! तेरी ही गोद में हूँ। मुझे वहाँ ले चलो जहाँ इस पापाचार की गन्ध तक न हो। (सरस्वती में कूदते) और उस पार जाने के लिए तैरते हैं।

(परदा गिरता है पर तुरन्त ही उठ जाता है।)

दूसरा प्रवेश

स्थान—वही।

[हर्म्य में से बीस-पच्चीस स्त्रियाँ एक दूसरी का हाथ पकड़कर हँसती हुई ढाल पर से उतरी चली आती हैं। उनमें रोहिणी भी है रास प्रारम्भ करती हैं। कुछ पुरुष ओसारे में देखने के लिए बढ़ आते

हैं, और धीरे-धीरे पास आते हैं। रास थोड़ी देर चलता है—अर्थात् एक-एक पुरुष का हाथ पकड़कर रास में सम्मिलित करती हैं। सब हँसते और कल्लोल करते हुए धक्का-मुक्की करते हैं।)

दूसरा—(लज्जित होकर) राजन्!

युवतियाँ—(गाती और घूरती हुई रुककर) ओह माँ!

(सब लज्जित होकर खड़ी हो जाती हैं चारों ढाल में से उतरकर नीचे आते हैं।)

अगस्त्य—(हँसकर) रुक क्यों गई? क्या हमें नहीं आना चाहिए था।

रोहिणी—पिता जी, साप सब क्यों आये? हमारे रंग में भंग हो गया। भगवती कहाँ है? हम उनकी बाट देखती हैं न!

अगस्त्य—भगवती आश्रम में आ गई हैं। हम भी तुम्हारे नृत्य में सम्मिलित होने वाले हैं।

रोहिणी—चलो, यह तो बहुत ही अच्छा था।

अगस्त्य—तुममें से अभी कोई थका नहीं है? रात तो बीतने को आ गई है।

एक युवती—नहीं, हम तो रोहिणी के चले जाने पर ही घर जायेंगी।

अगस्त्य—अरे, पर रोहिणी को कुछ विश्राम तो लेने दो, और यह विश्वरथ, (विश्वरथ और रोहिणी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हैं।)

पहली युवती—ठीक है। हम उस ओर देखेंगे।

रोहिणी—(लज्जित होकर) नहीं, नहीं, मैं आती तो हूँ।

दूसरी युवती—जाने पर वह कहाँ लौटकर आने वाली है?

(चार महापुरुष के अतिरिक्त सब आश्राम की ओर चले जाते हैं।)

दिवोदास—मैत्रावरुण, आपने तो जाने का पक्का निश्चय कर लिया है।

अगस्त्य—(कटुता से) मैं अभी भी कौशिक का पुरोहित हूँ न! आप भरतों को भेज रहे हैं तो मुझे भी उनके साथ ही जाना चाहिए।

दिवोदास—भेज रहे हैं ? आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

सुदास—किसी समय तो भरतश्रेष्ठ को अपने ग्राम में जाकर राज्य करना ही पड़ता न ?

अगस्त्य—(उग्रता से) अभी, आज और इस समय ?

विश्वरथ—गुरुवर्य, मुझे जाने में तनिक भी आपत्ति नहीं है। सुदास सत्य कहता है, कभी तो मुझे जाना ही पड़ता न। पर आज मेरे दुःख की सीमा नहीं है।

अगस्त्य—मैं समझता हूँ, वत्स !

विश्वरथ—(दिवोदास से) राजन्, इस समय मैं अपना दुःख किससे कहूँ ? मैंने तृत्सुओं के लिए जो कुछ किया यह धन के लोभ से किया, मैं इन दासों को साथ ले जाता हूँ, वह मूल्य बेकार न हो, मुझे आपने फणि से भी नीचा समझा, यही मुझे खलता है।

दिवोदास—(विश्वामित्र के कन्धे पर हाथ रखकर) वत्स ! वत्स ! ऐसा मत समझो। मैंने तुम्हें पुत्र-तुल्य माना है।

अगस्त्य—मेरा शिष्य महर्षि के समान न होता तो इस अपमान के बदले तृत्सुओं के प्राण ले लेता।

विश्वरथ—(खेद से) पर आज आप मुझे पराये के समान ढकेल दे रहे हैं ना।

दिवोदास—तुम तो जानते हो पुत्रक, मैं तो वृद्ध और दुर्बल हो गया हूँ और सुदास की भी यही इच्छा है।

विश्वरय—(मानो वेदना होती है) मैं जानता हूँ, भली प्रकार जानता हूँ। उसे ऐसा लगता है, मानो मैंने तृत्सुओं के हृदय उसके पास से चुरा लिए हों, मानो उसका युवराज पद ले लेना चाहता हूँ। राजन् मैं आपको किस प्रकार विश्वास दिलाऊँ कि मेरा हृदय शुद्ध है ?

दिवोदास—यह बात नहीं है।

विश्वरथ—(देखपूर्वक) राजन्, गुरुवर्य के प्रताप से बाल्यकाल से मैंने तृत्सुग्राम को अपना घर माना है, आपको मैंने पिता के समान समझा है, तृत्सुओं को मैंने भरतों से अधिक प्रिय माना है आपके और भगवान् के प्रयत्न सफल करने के लिए।

दिवोदास—(भावपूर्ण होकर) नहीं, नहीं पुत्रक तुमने हमारे सपने मूर्तिमान किये हैं।

विश्वरथ—(खेद से) और आज···मैं आपको दोष नहीं देता। मुझे आप अलग रखते हैं···सुदास की बात ठीक है। दो युवराज कैसे साथ रह सकते हैं? पर राजन् राजन् (भावावेश में) हम दो पुत्रों की इच्छा में भरत और तृत्सुओं के दो टुकड़े ही जायेंगे।

दिवोदास—नहीं-नहीं।

सुदास—(गर्व से) विश्वरथ, मुझे तुमसे ईर्ष्या नहीं है।

विश्वरथ—न कहने से सत्य कहीं असत्य हो सकता है, भाई?

अगस्त्य—कुछ नहीं वत्स, यह समस्त मानव कुल ही राजाओं के काम-क्रोध का हवि बनने के लिए अर्जित किया गया है। जब मैंने आर्यों को एक करने का विचार किया था तब भी यह सत्य मेरी दृष्टि से बाहर न था।

दिवोदास—मैं वचन देता हूँ। मैत्रावरुण, अपने जीते-जी मैं भारत तृत्सुओं को पृथक नहीं होने दूंगा।

विश्वरथ—राजन् भरत और तृत्सुओं के बीच धन का लेन-देन प्रारम्भ किया, मुझे भरतग्राम चले जाने को कह दिया। अब और रह ही क्या गया? मैं अपमान समझकर कुछ करूँ या आज्ञा मानकर सिर चढ़ाऊँ, परिणाम तो एक ही होगा।

दवोदास—(दुःखी होकर) वत्सु!

सुदास—पिताजी, थोड़ी देर में फिर विश्वरथ को तो विदा करने आना ही है न ? चलिए हो आयें।

दिवोदास—(निराश्रित होकर) चलो भाई ! (सुदास के साथ जाता है।)

विश्वरथ—(भावावेश में) गुरुदेव ! गुरुदेव ! संस्कार, विद्या और सद्-भावना तीनों के बन्धन सबको बाँधते हैं, पर वे राजाओं को क्यों नहीं स्पर्श करते ? उनका द्वेष ही उनकी समृद्धि है, जनपद-मात्र उनके द्वेष की अभिवृद्धि करने का साधन है।

अगस्त्य—पुत्रक, इस समय यह सब विचार छोड़ दो, भरतग्राम चलकर निश्चिन्तता से विचार करेंगे। चलो, तैयारी कर ली जाय।

विश्वरथ—जैसी आज्ञा ! (अगस्त्य जाते हैं, स्वगत) देव ! देव ! क्या मुझे सुखी नहीं होने दोगे !

(सुदास शीघ्रता से लौट आता है।)

सुदास—विश्वरथ, मैं एक बात कहना भूल गया।

विश्वरथ—कहो भाई।

सुदास—उस गय के पुत्र शक्ति को साथ न ले जाना।

विश्वरथ—शक्ति ? अरे इस पितृ-विहीन बालक को आज पुनः पिता मिल जायेगा।

सुदास—(हठ से) वह हमारा तृत्सु मघवन है। तृत्सुओं के पिता राजा दिवोदास बैठे हैं।

विश्वरथ—सच बात है। (निश्वास छोड़कर) सुदास, सुदास, क्या हम लोग कभी भाई-भाई बनकर रहेंगे ही नहीं।

दास—रहेंगे, किसी दिन। (अपमानपूर्वक) जब तृत्सु श्रेष्ठ होंगे तब, जब मेरे तेज से तुम चमकोगे, तब। (जाता है।)

विश्वरथ—तेज ! तेज ! पागल ! तेज का दाता तो देव सविता बैठा है। क्या किसी को तेज भी माँगा हुआ मिलता है ?···पर उसकी बात झूठी नहीं है। उसके पिता मुझे बड़ा पुत्र मानें

उसके गुरु मुझे शिष्य मानें, उसकी प्रजा मुझे अपना माने यह सब वह कैसे सहन कर सकता है ? यदि द्वेष न होता तो न जाने संसार कैसे चलता ! तब तो निर्मल रात्रि के व्योम में चमकने वाले तारों के समान मनुष्य एक दूसरे का तेज बढ़ाते हुए चमकते···पर क्या द्वेष को जीता नहीं जा सकता ? देव, क्या आपकी शक्ति की भी सीमा है ।

(सेनापति प्रतर्दन आता है ।)

सेनापति प्रतर्दन—राजन्, सब कुछ तैयार है । आप रथ पर चलेंगे या घोड़े पर ?

विश्वरथ—घोषा माँ कहाँ है ? और महाअथर्वण ?

सेनापति प्रतर्दन—घोषा माँ, माता सत्या और महाअथर्वण तो भारद्वाज के आश्रम में गए हैं । अभी लौटते होंगे । आप घोड़े पर ही चलेंगे न ?

विश्वरथ—(खेद से) हाँ···प्रतर्दन, क्या चलने में बहुत शीघ्रता है ?

सेनापति प्रतर्दन—(अधीर हो कर) दिवोदास ने अपमानित करके तो निकाल ही दिया । अब यहाँ रहना कैसे सहन हो सकता है ? मेरे तो रोम-रोम में अग्नि जल रही है कि कब इन सब के प्राण लूँ ।

विश्वरथ—एक मूर्ख के बदले इतने तृत्सुओं के प्राण लेना चाहते हो ?

सेनापति प्रतर्दन—उनका युवराज तो है न ?

विश्वरथ—तुम्हारे जैसे अभिमान से पागल लोगों के प्रताप से ही तो बेचारी निर्दोष जातियों के बीच बैर बढ़ता है । देव, ऐसों से कब उद्धार करेंगे ।

सेनापति प्रतर्दन—(हँसकर) आप तो ऋषि होते जा रहे हैं । इस समय मैं ऐसी बात सोचना ही नहीं चाहता ।

विश्वरथ—तुम्हारा उत्साह अभी ठण्डा नहीं पड़ा ।

सेनापति प्रतर्दन—कैसे ठण्डा पड़ सकता है ? इस दिन की प्रतीक्षा करते

करते तो मेरा जीवन बीता है।

विश्वरथ—क्या धरा है इन बातों में।

सेनापति प्रतर्दन—ऐसा क्यों कहते हो? कौशिक का राजदण्ड उससे भी अधिक प्रतापी प्रपौत्र के हाथ में सौंपने का आज मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

विश्वरथ—प्रतर्दन! पिता तुल्य प्रतर्दन! इस राजदण्ड में ऐसी कौन-सी मोहनी है? भगवती ने एक बार मुझसे पूछा था—मनु गये ययाति गये, कहाँ हैं उनके राजदण्ड? वही प्रश्न क्या आज मैं तुमसे भी पूछूं? कहाँ बचे हैं किसी के राजदण्ड?

सेनापति प्रतर्दन—मैं महर्षि नहीं हूँ केवल सेनापति हूँ। इसलिए मैं क्या उत्तर दूं? किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि प्रतापी राजदण्ड के द्वारा ही मनुष्यगण देवताओं की स्पर्धा करते हैं।

विश्वरथ—प्रतर्दन! राजदण्ड का अर्थ है मद, मोह और अहंकार की पराकाष्ठा। क्यों? ठीक है न? अपने काम-क्रोध के लिए जनपद जला डालने का—मनुष्य मात्र को अपने अभिमान चक्र के नीचे कुचल डालने का अधिकार—क्यों, यही है न? राजदण्डों के भार के नीचे विद्या, तप, शाँति, सौजन्य और सद्भाव सब कुचल डाले गए हैं, यह क्या नहीं देखते हो?

सेनापति प्रतर्दन—यदि राजदण्ड न हो तो सत्य और ऋत की रक्षा कौन करेगा?

विश्वरथ—क्या राजा वरुण का सनातन ऋत इतना प्रभावहीन हो गया है कि उड़ते हुए पक्षियों की चंचल छाया के समान, वह राजाओं के बिना सुरक्षित नहीं रखा जा सकता? राजदण्ड न हो तो क्या मैं विश्वरथ न रहूँगा?

सेनापति प्रतर्दन—यह सब मैं नहीं समझता। गाधि राजा ने मुझे अपना

जो राजदण्ड संभालकर रखने को दिया था उसे आज मैं अधिक प्रतापी और तेजस्वी बनाकर आपको सौंप रहा हूँ।

विश्वरथ—तुम यह बात कैसे समझोगे प्रतर्दन ? भरतों का राजदण्ड सम्भालने की योग्यता तो तुम्हारे हाथ में है, मेरे हाथ तो निर्बल निरर्थक हैं।

सेनापति प्रतर्दन—(हँसकर) नहीं, नहीं यह क्या कहते हैं ? इस समय आप थके हुए हैं। थोड़ा स्वस्थ हो लीजिए। (चला जाता है।)

विश्वरथ—(रोते हुए स्वर में, स्वगतः) हाँ थक गया हूँ। इन सब राज-दण्डों के भार से मैं तो सचमुच थक गया हूँ।

(आती हुई रोहिणी अन्तिम शब्द सुन लेती है।)

रोहिणी—मैं भी तो थक गई हूँ।

विश्वरथ—किस बात से ?

रोहिणी—कोई मुझे छोड़ता ही नहीं। कब प्रातःकाल हो कि मैं आपके साथ रथ में एकान्त में बैठूँ।

विश्वरथ—रोहिणी, मेरी आँखों में अन्धकार छाया हुआ है। राजा वरुण और पितृगण मुझे कुछ प्रकाश दिखा रहे हैं, पर मुझसे से वह देखा नहीं जाता। जब तक वह न देखूँगा, तब तक मैं ऐसा ही उदास ही रहूँगा। एक बात पूछूँ सखि, सच-सच कहोगी ? सच-सच बताना, तुम अगस्त्य की सत्यदर्शी कन्या हो। (उसके कन्धे पर हाथ रखता है।)

रोहिणी—पूछिये। सच कहूँगी, पर बुरा लगे तो क्रोध न कीजियेगा, समझे ?

विश्वरथ—बताओ तुमने किससे विवाह किया है ? तुमने भरतों के राजदण्ड से विवाह किया है या कि सप्तसिन्धु के सुविख्यात धनुर्धर से ही ? या तुमने विवाह किया है मेरे विशाल जन-

पदों से ? या धरती को कम्पित कर देने वाली विशाल सेना से ? क्या देवता जैसे तेजस्वी और कमनीय पुरुष का वरण किया है या लोगों के हृदय आकृष्ट करने वाले विजयी वीर का ? बताओ तुमने किसका वरण किया है ?

रोहिणी—(लज्जित होकर) कहीं ऐसी बातें भी पूछी जाती हैं ? आप ही बताइये आपने किस रूप से मुझसे विवाह किया है ?

विश्वरथ—(निराश होकर) मैं इस अंधकार को भेदना चाहता हूँ। तुम मेरा सहधर्मचारिणी बनी हो। मेरी सहायता करो··· तुमने विश्वरथ से विवाह किया है वह किस गुण पर ? मेरा जी इस समय घबरा रहा है।

रोहिणी—विश्वरथ, मैं आपके हृदय से अपरचित नहीं हूँ। आपके मन में तो राजा वरुण बसने की तैयारी कर रहे हैं।

विश्वरथ—(हठ से) रोहिणी मेरा वरण करते समय तुमने क्या देखा ?

रोहिणी—कौशिक, राजदण्ड और धनुर्विद्या, सेना और समृद्धि मेरे लिए तुच्छ है, ऐसा कहना तो असत्य होगा। आपकी कांति से मैं विह्वल नहीं हुई हूँ यह भी कैसे कहूँ ? लोक भक्ति के गन्ध-पुष्प जब आप पर चढ़ रहे थे तब से मैं पगली बनी हूँ, यह भी सत्य है पर···

विश्वरथ—पर···

रोहिणी—कौशिक, यह है तो मैं प्रसन्न हूँ। किन्तु यह न भी होता तो भी मैं तुम्हारा ही वरण करती। मुझे तो सहधर्माचार साधना है। अमृत को द्रवित कर देने वाले आपके हृदय के साथ देवताओं द्वारा प्रेरित की हुई आपकी बुद्धि के साथ, सर्वग्राही आपकी आर्य-दृष्टि के साथ। मेरे विश्वरथ तो इन सबके समवस्य हैं।

विश्वरथ—इस प्रसंग पर इस प्रकार तुम्हें दुःखी करता हूँ उससे तुम्हें असन्तोष तो नहीं होता ?

रोहिणी—मुझे आत्म मन्थन से असन्तोष नहीं होता भरत ! जब साथ में किया गया आनन्द सहधर्माचार है तब एक साथ पड़े हुए आँसू भी धर्माचार क्यों न हों ? साथ भोगे हुए विलास वैभव सहधर्माचार हैं तब एक साथ किए हुए तप क्यों न हों ? कौशिक, आपकी अन्तर्व्यथा के साथ व्यथा का अनुभव करना, आपके प्रेरणामय उड्डयन के साथ उड़ना, आपके तप में सानुकुल होना, इन सबसे बढ़कर सुन्दर सहधर्माचार और क्या हो सकता है ?

विश्वरथ—पर मैं मनस्वी हूँ, आत्मावलम्बी हूँ। बहुत बार मैं भग्नाश हो जाता हूँ। मेरा आत्मविश्वास जाता रहता है देवता मुझे पागल बनाते हैं। तब मैं बुद्धिहीन बन जाता हूँ और उस समय यदि राज्य सिंहासन का तेज न हो, या वैभव का आश्वासन न हो, तो यह सहधर्माचार तुमसे कैसे सहन किया जाएगा ? तब हमारे दुःख का पार न होगा। (नीचे देखता है।)

रोहिणी—नहीं विश्वरथ, (उसका मुँह ऊँचा करके) वह दिन कभी नहीं आयेगा। मैं आपको प्रभावशाली न बनाऊँ, अपनी अचल श्रद्धा से आपमें आत्मविश्वास की प्रेरणा न करूँ तब न ? प्रियतमा के पूज्य भाव और श्रद्धा में अद्भुत संजीवनी होती है।

विश्वरथ—(धीरे-धीरे) रोहिणी, सच है तुम्हारी बात। तुम्हारी श्रद्धा ही मेरा बाहुबल, तुम्हारा पूज्यभाव ही मेरा कवच और तुम्हारी प्रेरणा ही मेरी जीत है।

रोहिणी—मेरे ऋषिवर्य, मेरी एक ही इच्छा है मात्र तन्मय होने की। कौशिक···

(आगे शक्ति और पीछे काली दौड़ती है। पीछे एक तृत्सु सैनिक आता है। बच्चे विश्वरथ से लिपट जाते हैं।)

दोनों—भरतश्रेष्ठ, हम आपके साथ चलेंगे, यहाँ नहीं रहेंगे।

तृत्सु सैनिक—युवराज ने शक्ति को बुलाया है!

रोहिणी—क्यों? उन्हें क्या आवश्यकता उत्पन्न हुई?

विश्वरथ—(कटुता से) क्योंकि मैं तृत्सु मघवन का पालन-पोषण करके उसका राज्य ले लेना चाहता हूँ। जाओ सुदास से कहो, अभी जाने में देरी है। मैं स्वतः बात करूँगा।

(शीघ्र ही स्त्रियाँ और पुरुष आ पहुँचते हैं और दोनों को घेर लेते हैं।)

दोनों युवती—इतने में ही जाने का समय हो गया? रोहिणी, क्या चली जाओगी?

रोहिणी—तो क्या जन्म भर यहीं रहूँगी?

दूसरी युवती—और कौशिकराज, फिर आप कब दर्शन देंगे?

विश्वरथ—(निस्तेज हँसी हँसकर) जब भी देवों की आज्ञा होगी।

(तीनों मघवन आते हैं।)

गौतम मघवन—(विश्वरथ से) विश्वरथ, तो फिर जा ही रहे हैं? आपके बिना सब कैसे रह सकेंगे? इनका जाना सुन कर घबरा गए हैं।

अगस्त्य का शिष्य—(रोहिणी से) हम भी थोड़े ही दिनों में भरतग्राम आने वाले हैं।

दूसरा तृत्सु मघवन—हमारे दुःख का तो पार नहीं रहा।

विश्वरथ—(स्नेहपूर्ण स्वर में) यह सब क्या कहते हो?

गौतम मघवन—आप तो अपने घर लौट रहे हैं, पर हम तो आज अनाथ बन गए।

विश्वरथ—(खेद से) मघवन मैं घर नहीं जा रहा, घर छोड़कर जा रहा हूँ। अपने हृदय की व्यथा मैं किसे दिखाऊँ? यहाँ मेरा बचपन बीता, आधी युवावस्था बीत गई। यहाँ मैंने रो-हँसकर न जाने कितनी दिन-रातें आनन्द में काट दीं। मेरी न जाने

कितनी सुन्दर स्मृति-कणिकाएँ बिखरी हुई हैं।

(दिवोदास, सुदास और तृत्सु योद्धा आते हैं। धीरे-धीरे अन्धकार कम होता जाता है।)

दिवोदास—ओह, इतनी ही देर में जाने का समय भी हो गया ?

गौतम मघवन—राजन्, आप भी क्या कौशिकराज को जाने दे रहे हैं ?

विश्वरथ—यह बात मत उठाओ, राजदण्ड तो राज का बन्धन है। अब कैसे रह सकता हूँ ? मैं रह जाऊँ तो मेरा और राजा दिवोदास दोनों का राजदण्ड शोभाहीन हो जाय। हम ऐसा क्यों होने दें ? जितना आप भरतों को प्यार करते हैं उतना हम लोगों को थोड़े ही करते हैं। हम जानते हैं न !

(शेष आँसू बहाते हैं।)

विश्वरथ—मैं फिर आऊँगा। जानता हूँ मैं कि यहाँ के घर-घर में अपने स्वजन छोड़कर जा रहा हूँ मैं आप लोगों को छोड़कर नहीं जा रहा हूँ। बहन, मैं अपना हृदय यहीं छोड़े जा रहा हूँ और स्नेहपूर्ण स्मृतियों को साथ लिए जा रहा हूँ।

ऋक्ष—(वेग से आकर) कुछ सुना कौशिक, महर्षि वसिष्ठ तृत्सुग्राम छोड़कर चले गए। धीवर लोग कह रहे हैं कि ऋषि मैत्रावरुणि आपका गाँव छोड़कर सरस्वती पार करके बहुत दूर बन में चले गए हैं। महर्षि अगस्त्य ने भी बहुत ढूँढ़ा, पर आश्रम में वे कहीं नहीं हैं।

दिवोदास—(चौंककर) क्या बकते हो ?

दिवोदास—(घबराकर) अरे रे, हमारे ऊपर यह क्या मुसीबत आई ?

विश्वरथ—घबराओ मत अतिथिदेव उनका मन परेशान था। हमारे जाते ही वे फिर लौट आएँगे। तृत्सुश्रेष्ठ, आप पितातुल्य हैं। जब भी काम पड़े, आज्ञा दीजिएगा। मैं अवश्य उपस्थित होऊँगा।

दिवोदास—(गले लगाकर सिर सूँघता है।) पुत्रक और जब मैं न भी रहूँ तब भी सुदास को भाई मानना, और तृत्सु (चारों ओर

देखकर) तो तुम्हारे हैं हो।

विश्वरथ—अतिथिग्व, मेरी बात तो सुदास नहीं मानेगा, कदाचित् आप की मान जाय। इसलिए मेरी ओर से इसे विश्वास दिलवा दीजिए कि मैंने इसे सगा भाई ही माना है और सदा मानता भी रहूँगा और तृत्सुश्रेष्ठ, तृत्सु तो मेरे ही हैं, और मैं भी सदा उनका ही हूँ। (आँसूओं से गला रुंधता है।) और जाते-जाते क्या मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे ? अस्वीकार न कीजियेगा। यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है—पुत्रभाव से। यह हर्म्य, यहाँ का मेरा सब धन-धान्य और लेखा करके जो-जो आपने दिया है वह सब···तृत्सुओं को बाँट देना।

दिवोदास—(गले लगकर) कौशिक, कौशिक ! तुम दानवीर हो।

सुदास—(क्रोध से) पर···

विश्वरथ—(विनती करते हुए) भाई जाते-जाते तो मेरी बात रख लो।

सुदास—पर तृत्सु···

गौतम मघवन—युवराज, विश्वामित्र हमें देते हैं तो हम लेंगे। हमें लज्जा नहीं लगती। भरतों से हमने क्या नहीं लिया ?

दिवोदास—भाई, मैं तुम्हारा दिया हुआ स्वीकार करता हूँ।

(शंख ध्वनि)

विश्वरथ—अरे, जाने का समय हो गया। भाइयो, बहनो, माताओ ! अब मुझे आज्ञा दो। (शक्ति आकर लिपटता है।)

दोनों—नहीं, नहीं। मैं आपके ही साथ चलूँगा।

विश्वरथ—(समझाकर) देखो, तुम तो तृत्सु मघवन हो। बड़े होना तो मेरे साथ चलना। हाँ !

शक्ति—(रोकर, गिड़गिड़ाकर) नहीं, अभी ही ! मैं नहीं रहूँगा। नहीं, नहीं, आप कहते थे न कि·····(रोता है) मैं नहीं रहूँगा, मैं नहीं रहूँगा।

विश्वरथ—(दिवोदास के प्रति) राजन् इन बच्चों का जो इस समय क्यों

दुखाया जाये ? मैं इन्हें भरतग्राम से फिर भिजवा दूँ तो ?

सुदास—(दृढ़ता से) कौशिक ! शक्ति तो तृत्सुओं में श्रेष्ठ मघवन है। हमारी नाक है। उसे आप नहीं ले जा सकते।

विश्वरथ—मैं जानता हूँ। पर इसे मैं समझाऊँ कैसे ? देखो शक्ति, युवराज जो कहते हैं वह मानो। तुम्हारा घर यहाँ है, तुम्हारे दादा-दादी यहाँ हैं।

सुदास—(क्रोध से) मैं समझाता हूँ। चल ! पागल मत बन। (शक्ति का हाथ पकड़ता है।) तू दूसरों के साथ नहीं जा सकता। (बलपूर्वक विश्वरथ के पास से खींच लेता है।) ले जाओ उस निर्लज्ज को, यदि इच्छा हो तो ?

विश्वरथ—(होंठ दबाकर) क्या ?

काली—(शक्ति से लिपटती है।) शक्ति, शक्ति !

(दोनों बच्चे रोते हुए गिड़गिड़ाते हैं।)

सुदास—(दौड़कर शक्ति के बाल पकड़ता है।) अभागे ! तेरी मौत आई है।

गौतम मघवन—क्या कर रहे हो युवराज ?

विश्वरथ—सुदास ! सावधान……।

(बीच में आकर तेजी से शक्ति को बचाता है। उसकी आँखों में से चिनगारियाँ निकलती हैं। आधे क्षण तक सब पीछे हटते हैं। सुदास तलवार पर हाथ रखता है। सेनापति प्रतर्दन तेजी से हाथ में राजदण्ड लेकर आता है।)

सेनापति प्रतर्दन—भरतश्रेष्ठ, लीजिए अपना राजदण्ड। सब तैयार है, आपकी (राजदण्ड विश्वरथ को देता है।) प्रतीक्षा करते हैं।

सुदास—(धमकी देकर) विश्वरथ इस लड़के को छोड़ दो……(पीछे हटकर) नहीं तो फिर देखेंगे, हम ही हैं, या तुम ही हो।

गौतम मघवन—विश्वामित्र, आप कुछ न बोलिए।

रोहिणी—(विनती करते हुए), विश्वरथ छोड़िये भी इस हठ को।

विश्वरथ—(शान्त होकर। शक्ति से) मेरे पुत्रक, मैं तुम्हें नहीं ले जा सकता। नहीं·····रोओ मत। (गले लगाकर उसके आँसू पोंछता है।) देखो मैं फिर आऊँगा·····फिर आऊँगा···

(शक्ति रोता है। विश्वरथ की आँखों में आँसू आते हैं। उसका कंठ रुँध जाता है। वह दोनों बच्चों को गले लगाकर खड़ा होता है। वृद्ध, स्थूल घोषा माँ आती।।)

घोषा माँ—(आते-आते) वत्स, अब चलो देर होती है।

विश्वरथ—(रोकर) मैं कैसे चलूँ? माँ—माँ, पैर ही नहीं उठते। देव! (आकाश की ओर देखकर प्रार्थना करता है।) मैं नहीं जा सकता। मैं अन्धकार में हूँ। मुझे अपनी तेज मूर्ति के दर्शन दीजिये—मार्ग दिखाइये। (ऊँची आँखें करके अचेत-सा देखता है। सब स्तब्ध हैं। प्रातःकाल का सुनहरा प्रकाश बादल को जगा देता है।)

(लोपामुद्रा आती है। सुनहरे प्रकाश में उनका मुख स्वर्ण के रंग-सा चमकता है)।

लोपामुद्रा—(आते हुए) वत्स, चलो, क्या विलम्ब है?

विश्वरथ—(अर्द्धचेतन के समान) देव, देव, मैं यहाँ से पग नहीं उठा सकता। (सहसा सचेत होकर विनती करता है।) भगवती, मेरी माँ! आपने मुझे कहा था न—मनु और ययाति भी गये। कहाँ हैं उनके राजदण्ड?

लोपामुद्रा—(न समझकर) क्या है वत्स?

(पास आकर विश्वरथ के कन्धे पर हाथ रखती है।)

विश्वरथ—(प्रेरणा से तेजस्वी मुख ऊँचा करके) मनु और ययाति के राजदण्ड कालक्रम से गये तो मैं अपना राजदण्ड स्वेच्छा से क्यों न जाने दूँ? (राजदण्ड फेंक देता है।) भगवती! (लोपामुद्रा की विनती करके) राजदण्ड तो बन्धन है—जन-

पति और जनपद दोनों का। मुझे नहीं चाहिए यह सब।

(लोपामुद्रा के आगे घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़कर विनती करता है।)

भगवती ! आपने मुझे विश्वामित्र कहा था तो मुझे विश्वामित्र·····इन सब का मित्र होने दीजिये·····विद्या और तप ही मेरी राज्यलक्ष्मी·····।

(अचेत होकर गिर पडता है। लोपामुद्रा उसे उठा लेती है।)

(यवनिका पात)

चौथा अंक

समय—पाँच दिन के पश्चात् ।

स्थान—ऋक्ष के घर का छोटा और गन्दा बाड़ा ।

(एक ओर काँटों का ढेर है, दूसरी ओर दो गायें बंधी हैं, पेड़ के नीचे एक छोटी झोंपड़ी है । झोंपड़ी के छप्पर पर पेड़ के नीचे छिपकर सुरा बैठी है । झोंपड़ी के सामने एक चक्की है ।)

अहाते का द्वार खोलकर जयन्त तृत्सु आता है और ऋक्ष को ज्यों-त्यों अन्दर लाता है । ऋक्ष नशे में है और हाँपता हुआ चलता है ।)

ऋक्ष—(ठोकर खाते हुए) क्या मेरा ही घर है ! तुम्हें विश्वास तो है ? विश्वास तो है न ?

जयन्त तृत्सु—(मदमत्त के समान हँसकर) क्या तुम्हें विश्वास नहीं है ?

ऋक्ष—(हँसकर) मुझे विश्वास हो या न हो इससे तुम्हें क्या ? तुम्हें विश्वास होना चाहिए । क्या विश्वास है ?

जयन्त तृत्सु—(ठोकर खाकर) मुझे विश्वास है कि तुम्हें ऐसा विश्वास है कि मुझे विश्वास हो या न हो····· ।

ऋक्ष—पर विश्वास हो या न हो····· ।

मृगा पौरवी—(झोंपड़ी में से बोलकर) आया नामहुबाऊ ! पापी ! घुमन्तू ! कुलकलंक !

(ऋक्ष आँखें फाड़कर देखता है और माथे पर हाथ मारता है । उसका मद कुछ-कुछ उतरता है और वह डरते-डरते चारों ओर देखता है ।)

ऋक्ष—(धीरे से) जयन्त, जा, भाग जा ! मुझे विश्वास हो गया, यह मेरा ही वर है। मेरी माँ के अतिरिक्त तृत्सु में और कौन इतनी वेग से ऐसी प्यारी गालियाँ दे सकता है ?

मृगा पौरवी बाहर आती है। वह साठ वर्ष की सशक्त और भयंकर स्त्री है। उसके हाथ में मिट्टी के बर्तन में जूठन है।)

मृगा पौरवी—(चिल्लाकर) और कौन है साथ दुष्ट ? (जयन्त भाग जाता है।) न जाने कैसी-कैसी माताओं की सन्तानें मेरे लड़के को बिगाड़ने यहाँ आती हैं ? और तू (आकर ऋक्ष का कान पकड़कर) दुष्ट, मोटे घुमन्तू, अधम·····

ऋक्ष—(धीरे से) ओ—ओ—माँ ! जानती नहीं, मैं भगवान् अगस्त्य का शिष्य और ऋषि ऋक्ष हूँ। आपको देवता लोग, आपको·····

(हँसता है और बैठ जाता है मृगा क्रोध में सब जूठन ऋक्ष के शरीर पर डालती है।)

सुरा—(छप्पर से) मी आ-ऊँ !

(मृगा छप्पर की ओर देखती है।)

मृगा पौरवी—ठहर बिल्ली, तुझे भी ठीक करती हूँ। (ऋक्ष से) और तू भगवान अगस्त्य का शिष्य बनता है ? तेरा मुँह ही बना रहा कुलकलंक ! न पढ़ा, न लिखा सारे गाँव में थू-थू होती है और यह सब मुझे सुनना पड़ता है। तू कैसे मेरी कोख में जन्मा ?

ऋक्ष—(टहलते हुए) हे अम्बा, यह बात बिलकुल सहन है पर मैं कौशिक का प्रिय मित्र हूँ। सावधान, यदि मेरे प्रिय शिष्यों को कुछ बुरा-भला कहा तो।

मृगा पौरवी—कौशिक के मित्र ? वह तो भागकर गोवन्त पर्वत में छिपकर बैठा है।

ऋक्ष—और उसकी माँ तुम्हारी जैसी नहीं है, फिर भी ? पर हे अम्बाओं से श्रेष्ठ, तो तुम यों कहना चाहती हो कि मेरा मित्र तुम्हें पूछे बिना देव की आराधना भी ना करे ? हे कर्कशा !

मृगा पौरवी—(क्रोधित होकर मारने लगती है।) गाली देता है मुझे दुष्ट ! पापी ! नौ महीने तेरा पत्थर-सा भार मैंने ढोया है और···

ऋक्ष—अरे ! अरे ! मेरे शिष्य क्या कहेंगे ? (विचित्रता सूचित करके) सप्तसिन्धु में पूज्य ऋषि की यह दुर्दशा ! देव ! देव ! आप क्या देख रहे हैं ? आपका वज्र कहाँ गया ? अरे ! अरे ! सुरा तू भी कहाँ मर गई ? दौड़-दौड़, सहायता के लिए दौड़।

सुरा—(छप्पर पर से) भी···आ···ऊँ...यहाँ हूँ जीती हूँ, ऊपर बैठी हूँ, तब-तक मिआऊँ !

(मृगा पत्थर लेकर सुरा को मारती है।)

मृगा—(खीझकर) हँसती है ? (अपना हाथ दबाकर) मारते-मारते मेरा हाथ दुख गया।

ऋक्ष—तो अम्बा, अब अपने देवक पुत्र को मारने का काम कल के लिए छोड़ रखो।

मृगा—मैंने तुझे क्यों जन्म दिया···

ऋक्ष—यही आश्चर्य प्रकट करते तो पचीस वर्ष हो गए। पर वह न मिटा तो नहीं ही मिटा, और अब मिटने वाला भी नहीं है।

मृगा—लोग तुझ पर थूकें, तेरा मित्र जाकर पर्वत में छिप कर बैठे, तू इधर-उधर घूमता रहे, रात-दिन सब सुरा पान करें, और तू उस नकटी के भरोसे मुझे कहाँ छोड़ जाये। (सिर पीटकर) मैं मर क्यों न गई ? (सिसकियाँ लेती है।) ओह···ओह···

ऋक्ष—(शाँत भाव से) हे अम्बा यदि आप मरी हों तो पुण्य न मरे और अब मरने वाली हो तो मरी हुई नहीं कहला सकतीं और (क्रोध का ढोंग कर) क्यों री सुरा, मेरी माता को सताती है ?

मृगा—जिसके घर में नकटी होती है वह तो सुख की नींद सोता है और यह नकटी मेरे प्राण लिए डाल रही है। ऊपर नीचे। (सुरा हँसती है।) देखो तो सही, कैसी बिल्ली जैसी ऊपर चढ़ी बैठी है। दिन भर बकती रहती है।

सुरा—(ऊपर से) मिग्राऊँ!

मृगा—दुष्ट नकटी बिल्ली, तू उतर तो सही, तेरी हड्डियाँ चूर-चूर कर डालूँगी। और (ऋक्ष से) घुमक्कड़ लोग कहते हैं कि तू इस बिल्ली को आर्या बनाने वाला है। यह सब किया तो मैं तेरे प्राण ले लूँगी। सुन रहा है या नहीं?

ऋक्ष—वह तो कब की आर्या बन चुकी है।

मृगा—क्या बकता है? अब समझी। तभी गौरी की माँ तेरे लिए कहती थी कि तेरे साथ अपनी कन्या का ब्याह नहीं करेगी। गौरी जैसी सोने की पुतली तुझे कौन देगा?

ऋक्ष—अम्बा, इन अनुभवों के पश्चात मुझे इस बात का तनिक भी मोह नहीं रहा। नहीं विवाह करेगी उसका दुर्भाग्य। ऋषि ऋक्ष जैसे जमाता से हाथ धोवेगी। मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। जो मेरे पैर न धोये वह मेरे लिए तो मरी हुई समझो।

मृगा—पितरों का तारने की तुझे क्या चिन्ता होगी? तू तो पितरों पर घास छोड़ेगा, घास।

ऋक्ष—माँ, तुम घबराओ मत। विश्वरथ ने उग्रा को पत्नी बनाया···

सुरा—(ऊपर से) मिग्राऊँ! मैं भी कहती थी कि मैं आपके पुत्र की पत्नी होने वाली हूँ। मी—ग्रा—ऊँ

मृगा—(क्रोध से काँपकर) क्या कहा? दोनों के प्राण ले लूँगी।

ऋक्ष—पर अम्बा, सुरा तो उग्रा की मौसी शौर शम्बर की रानी की बहन लगती है। तुम्हारी सौ गौरियाँ उसके पानी भरें।

मृगा—(शोकसूचक स्वर में) हाय! हाय! दुष्ट तू ये क्या करने बैठा

है ? कौशिक था तब तक तो उसका सहारा था। अब तो तू कुत्ते की मौत करने की ठानी है।

ऋक्ष—अम्बा, पागलपन की बात मत करो।

मृगा—(हाथ उठाकर) आया बड़ा बुद्धिमान कहीं का।

ऋक्ष—सुरा में पागल हूँ ?

सुरा—(ऊपर से) कौन कहता है ? झूठी बात है। मीआऊ···

ऋक्ष—देखो, मैं कहता नहीं था ? इस पूरे तृत्सुग्राम में तुम अकेले ही मुझे पग्गल कहती हो और इसी प्रकार मुझसे व्यवहार करती हो।

मृगा—इस प्रकार हाँ, हाँ कहकर ही तो यह नकटी तुझे पागल बनाती है।

ऋक्ष—हे अम्बा, हाँ कहने वाली पत्नी 'न' कहने वाली सहस्र माताओं से कहीं अधिक मूल्यवान है।

मृगा—(पुनः मारती है।) दुष्ट, तू मुझे भी पागल बनाने बैठा है ? मैं कह देती हूँ यदि इस नकटी से विवाह किया तो मैं सरस्वती में डूब मरूँगी।

ऋक्ष—तो अम्बा, मैं तुम्हें विधिपूर्वक पिण्डदान दूँगा।

मृगा—तू तो किसी भी प्रकार मुझे मारना चाहता है। ले मार, मार (रो देती है।)

(चिल्लाती हुई झोंपड़ी में चली जाती है।)

सुरा—ऋक्ष, देखो वह चली गई क्या ?

ऋक्ष—फिर मुझे ऋक्ष कहा अरे भगवान कहो, आर्यश्रेष्ठ कहो ? और कुछ नहीं है कहने को ?

सुरा—(ऊपर से आँखें नचाकर) ऋक्ष, तुम कहो तो भगवान कहूँ "मिआऊँ" कहूँ।

ऋक्ष—तुम नहीं आप

सुरा—हाँ, हाँ, 'आप' पर तुम देखो तो सही···

ऋक्ष—नीचे उतरो।

सुरा—(डरती हुई) क्या चली गई ?

ऋक्ष—हाँ, हाँ। उतरो (सुरा छप्पर से नीचे उतरती है।) कब से ऊपर बैठी हो।

सुरा—सबेरे से। क्या करूँ ?

(पास पड़ा हुआ घड़ा लाकर पानी से ऋक्ष के शरीर पर की जूठन धोने लगती है।?

ऋक्ष—यह जो तुम छप्पर पर चढ़ बैठती हो मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगता। अभी तक न तो मैंने सुना है न देखा है कि कोई ऋषि पत्नी छप्पर पर चढ़कर बैठती हो।

सुरा—पर क्या ऐसी अम्बा मिलने पर भी ऋषि-पत्नी छप्पर पर नहीं चढ़ेगी ? यदि मैं छप्पर पर जाकर नहीं बैठूँ तो मुझे अम्बा मार ही डाले (ऋक्ष को धोती है।)

ऋक्ष—पीछे से धो—पीछे से। अरे यह छप्पर पर चढ़कर 'मिआऊँ' क्यों बोलती हो ?

सुरा—यदि ऋषि-पत्नी को कोई बिल्ली कहे भी तो वह क्या करे ? ऋक्ष का सिर धोते हुए (सीधे बैठो न कितना सिर हिलाते हो।

ऋक्ष—(निःश्वास छोड़कर) सुरा, कितने बुरे दिन आ गये हैं मुझे सुरापात्र भी कोई उधार नहीं देता। क्या करूँ सुरा ?

सुरा—(हाथ धोकर सामने आती है।) इसमें तुम्हारा ही दोष है।

ऋक्ष—(नाक पर अँगुली रखकर) फिर कह···

सुरा—भूल गई—आपका। कौशिक को आपने ही जाने दिया न।

ऋक्ष—उसे तो दुष्ट सुदास ने निकाल दिया। इसी से तो इस समय हम सबने उसे इस प्रकार चिढ़ाया।

सुरा—(गम्भीर होकर) यदि कौशिक न आये तो हम सब कहीं के न रहेंगे।

ऋक्ष—सच बात है सुरा ! वही कौशिक था तब लोग इस ऋक्ष के चरण पूजते थे। इस समय उसे सब मार्ग के बेकार के रोड़े

के समान ठोकर लगाते चलते हैं। और ऋक्ष जैसे-का-तैसा बना रहा। समय बड़ा बलवान होता है। क्या किया जाये ?

सुरा—कौशिक लौटकर नहीं आयेंगे तो ये हम सब को मार डालेंगे।

ऋक्ष—भगवती तो आती है और वशिष्ट चले गये।

सुरा—पर हमें आर्य कोई नहीं बनायेगा ऋक्ष ! फिर आप मुझे पत्नी कैसे बनायेंगे ? अम्मा मुझे बेच देगी···(दयार्द्र होकर) मैं मर जाऊँगी। आँसू पोंछती है।)

ऋक्ष—रो मत—रो मत···सुरा ! (सुरा सिसकियाँ लेती है।) तुम रोती हो तो मेरा जी घबराता है। मैं करूँ क्या ? (सुरा को गले लगाता है।)

सुरा—(सिसकियाँ लेते हुए) मुझे बेच देंगी—काम कर करके मैं मर जाऊँगी और बूढ़ी होने पर···अह···(घबराती है।)

ऋक्ष—पर मैं तो हूँ।

सुरा—आपको भी सब मार डालेंगे।

ऋक्ष—तो बस में क्या ! छप्पर चढ़ना तुझे आता है और इसका कोई मार्ग ढूँढना नहीं आता।

सुरा—यदि कौशिक न आए तो हमने निश्चय कर लिया है कि हम प्राण दे देंगी।

ऋक्ष—'हम कौन ?'

सुरा—हम पाँच उग्रा बहन की सम्बन्धिनी हैं। दोपहर में नदी पर हम इकट्ठी हुई थीं। यदि कौशिक न आए तो हमें अपने को गाय और गधे आदि के समान बिकवाना नहीं है। हम डूब मरेंगी। जहाँ उग्रा बहन गई है वहाँ हम भी चली जायेंगी।

ऋक्ष—(अधीर होकर) तब ? पर तब मैं क्या करूंगा ? कोई उपाय निकालो उपाय।

सुरा—एक ही उपाय है, पर आप में साहस कहाँ है ?

ऋक्ष—तुम भी ऐसा कहती हो ? कौन-सा उपाय है ?

सुरा—चलो हम लोग गोवन्त पर्वत पर चले चलें। वहाँ जाकर कौशिक से कहें कि यदि आप न चलें तो हम लोग आपके चरणों में प्राण दे देंगे।

(भयभीत होकर) वे न आए तो ? वे तो बहुत ही हठीले हैं। क्या हमें प्राण देने होंगे ? ऐसी बात ?

सुरा— मैं तो अवश्य प्राण दे दूँगी।

ऋक्ष—पर मैं ?

सुरा—कौशिक न आये तो यहाँ आपको कोई टके को नहीं पूछेगा, और लौट आए तो ऋक्ष ऋषि के घर क्या कमी रहेगी !

ऋक्ष—पर तुम तो चरणों में प्राण देने की बात करती हो न ! अरे हाँ इस समय रोहिणी और वृक भी जाने वाले हैं।

सुरा—क्यों ?

ऋक्ष—मैत्रामरुणी कहती है कि यदि कौशिक न आये तो मैं भी यहाँ नहीं रहती। (विचार करके) ठीक, ठीक सुरा, तुम्हारी बात एकदम सच्ची है। कौन कहता है कि तुम्हें देवों ने आर्या नहीं बनाया ? हम जायेंगे ? और चरणों में पड़ेंगे। बस वे अवश्य आयेंगे। रोहिणी भी वहीं है। हा—हा हम लोगों को वे मरने नहीं देंगी। चलो, इसी समय, नहीं तो देर हो जायेगी।(विचार करके) पर, पर रात में कोई खा जायेगा तो ?

सुरा—डरते क्या हो ? मेरी आँखें बिल्ली से भी तेज हैं।

ऋक्ष—(प्रसन्न होकर) सुरा, सुरा, सुरा तुम सचमुच मेरी पत्नी बनने के लिए ही पैदा हुई हो। (पुनः गले लगता है।) चलो।

सुरा—(आँखें नचाकर) पर अम्बा मारेगी तब मैं छप्पर पर चढ़ जाऊँगी, समझे !

ऋक्ष—अच्छा, अच्छा चढ़ जाना और कुछ।

सुरा—और यदि वह मुझे बिल्ली कहेगी तो मैं भी मीआऊँ करूँगी।

ऋक्ष—अच्छा, करना। पर जब वह बिल्ली कहें तभी नहीं तो नहीं।

सुरा—हाँ, यह मान गई।

(दोनों जाते हैं)

(परदा गिरता है।)

दूसरा प्रवेश

समय—दूसरे दिवस का ब्रह्म मुहूर्त।

स्थान—गौवन्त पर्वत के एक शृंग पर, एक वृक्ष के नीचे।

अनशन और जागरण के कारण विश्वरथ अशक्त पड़े हैं। वह ज्यों-त्यों करके हाथ टेककर उठ बैठते हैं। उनके स्वर में वेदना का स्वर सदा सुनाई दिया करता है। आकाश के तारे जगमगाते हैं! सामने सप्तर्षि हीरों से मढ़े हुए महाऋक्ष के समान भव्य उत्तर दिशा के सहारे लटके हैं।

विश्वरथ—कब तक? पाँच बार व्योम मार्ग से आये और गये। सप्त-ऋषियो! पाँच बार अपने दर्शन दिए। अब तो अन्न और नींद के बिना मेरा सिर घूमता है। आवाहन करते-करते मेरा गला बैठ गया है। (हाथ जोड़कर विनय करते हुए) भरतश्रेष्ठ कुशिक! ययाति और मनु! पितृदेव! राजा वरुण! आप पक्षियों को मार्ग दिखाते हैं, मुझे क्यों नहीं दिखाते? मैंने कौन से पाप किये हैं? (नीचा सिर करके) क्या करूँ मैं? क्या भरतों का राजदण्ड छोड़ दूँ? महर्षियों के ही चरणों का अनुसरण करूँ, मैं मुनियों का व्रत लेकर वन में विचरण करूँ? (विचार करके) और रोहिणी की, घोषा माँ की, भरतों और तृत्सुओं की क्या गति होगी?

और मेरी ओर दीनता से देखने वाले दस्यु समूह का क्या होगा ? (उसका गला भर जाता है। थककर विनती करते हुए) पितरो ! पितरो ! आपको भी अपने पुत्र पर दया नहीं आती ? आज्ञा कीजिए।

(उसे चक्कर आ जाता है और वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है। उसके पश्चात् जब वह बोलता है तब उसकी आँखों में तन्द्रा और आश्चर्य के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। उसके समस्त व्यवहार में नींद में बोलने-चलने वाले की अपरिचित कृत्रिमता दृष्टिगोचर होती है। वह ऊँचा बैठ जाता है, ऊपर देखता है, और चारों ओर दृष्टि घुमाता है। उसके व्यवहार में स्वप्न और दिव्य-दर्शन दोनों का मिश्रित प्रभाव दिखाई पड़ता है।)

विश्वरथ—कौन है ?

(यहाँ वह लेटा हुआ है वहाँ दूर, कुछ दूरी पर, एक वृत बनता और उसमें लोपामुद्रा धीरे से आ खड़ी होती है। उसकी आँखें विश्वरथ को भावपूर्ण दृष्टि से देखती हैं। विश्वरथ पूज्यभाव से, पर आँखें फाड़ कर देखता है।)

लोपामुद्रा—मैं, मैं कवियों और मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की हमेशा वरप्रदा, उनके द्वारा सज्जित दिव्य रूपों की दिव्यता···

विश्वरथ—(हाथ जोड़कर) माता ! उषा की प्रतिमूर्ति ! सृष्टि की परम सौन्दर्यमयी चेतना ! मार्ग दिखाइए !

लोपामुद्रा—पर दिखाई देता है मार्ग उसे जो पृथ्वी के रहस्यों को जानता है—द्यावा पृथ्वी को चलाने वाले सर्वदर्शी ऋषियों को।

विश्वरथ—आप मेरी हँसी उड़ाती हैं···

लोपामुद्रा—देखो मैं दिखाती हूँ।

विश्वरथ—दिखाइए, दिखाइए,। (लोपामुद्रा सहज ही ऊपर उठती है और अदृश्य हो जाती है। विश्वरथ निद्रित के समान टुलक

जाता है। थोड़ी देर पश्चात् पुनः तेज का वृत बनता है। विश्वरथ सहसा आँखें खोलता है, काँपता है और भयातुर होकर देखता रहता है। वृत में चर्म से सुसज्जित कंधे पर बाण और तुणीर धारण किये हुए वृद्ध और प्रचण्ड कुशिक दिखाई देते हैं।)

कुशिक—वत्स ! मेरे वंशजों के शिरोमणी !

(वह विश्वरथ के पास तक उतर आते हैं। फिर कुछ ऊपर जाकर बिना सहारे खड़े रहते हैं।)

विश्वरथ (चौंककर) कौन ? कौन ? ओह···(आँखों पर हाथ रखते हुए) कौन, पितामह कौशिक ?

कुशिक—मैं सहस्र सन्तानों का पिता, आज पितृलोक में बैठा-बैठा तुझे देखकर प्रसन्न हूँ।

विश्वरथ—(विनयपूर्वक सिर झुकाकर) कहिए, कहिए भरतोत्तम, मैं अन्धा हूँ मुझे प्रेरणा दीजिए।

कुशिक—सिन्धु के तीर पर मैं जब सन्तानों को समृद्ध करता था, तब मेरे हृदय की एक अभिलाषा थी···जब मैं शत ग्रामों में भरतों को बसाता, धरा कम्पित करता और गर्जन करता था, तब एक ही मेरे हृदय की अभिलाषा थी।

विश्वरथ—क्या ?

कुशिक—एक पुत्र···

विश्वरथ—पुत्र सहस्र थे न !

कुशिक—एक पुत्र, जो भरतों की धरा का स्वामी बनाए···रेणु से सूर्य को छा दे।

विश्वरथ—भरतों के प्रताप से आज भी सप्तसिन्धु गूँजता है।

कुशिक—एक पुत्र, जो भरतों का पिता हो। एक पुत्र जो भरत का विश्वकर्मा···तू ही है वह।

(कुशिक का वृत हट जाता है।)

विश्वरथ—मैं···? मुझमें यह शक्ति नहीं है भरतश्रेष्ठ! ओ···(वृत अदृष्य हो जाता है। एक पल में सहसा यह आँखें मलता हुआ बैठ जाता है और उनींदी दशा में बोलता है।) पितामह कुशिक ने क्या कहा? क्या मैं पितृभक्ति-विहीन हूँ? नहीं, नहीं जब तक एक भी भरत रहेगा, पितर तर्पण के प्यासे न रहेंगे। (भौंक में) उनके कहने का क्या अर्थ है? क्या राजदण्ड लिए बिना पितरों की तृप्ति नहीं होगी?··· पितरो! स्पष्ट क्यों नहीं कहते? (वह नींद के कारण सिर नीचे झुका लेता है। उसके सिर के सामने वृत होता है। वृत में सुवर्ण कवच आदि से सज्जित हाथ में चमकता भाला लेकर चक्रवर्ती ययाति आते हैं। उनके मुख पर महत्त्वाकाँक्षा है।)

ययाति—पुत्रक, जा मेरा अधूरा काम पूरा कर!

विश्वरथ—(हाथ जोड़कर) कौन-सा, पुण्यस्मरण ययाति! चक्रवर्तियों में श्रेष्ठ?

ययाति—मेरा अधूरा काम पूरा कर!

विश्वरथ—आपका अधूरा काम! आपके पदस्पर्श से पृथ्वी मनुजों की हुई, दानव मनुष्याधीन हुए। सप्तसिन्धु छोड़कर वृत भी गिरगह्वरों में जा छिपा। और क्या काम अधूरा बच रहा है?

(ययाति खेद से देखते हैं।)

ययाति—कौशिक, इन तुच्छ मनुष्यों ने पग-पग पर निराशा के काँटे बिखेरे हैं। बाहुबल के मद से मेरा हृदय उछलता था। सुवर्ण कवच से सज्जित मैं स्वर्ग के शृंगों का उल्लंघन करता हुआ आगे बढ़ा, पर हार गया और स्वर्ग से गिरा, मिट्टी में पड़ा रहा, मेरा राजदण्ड टूट गया।

विश्वरथ—(निराश से) तो आर्यों में श्रेष्ठ, मुझसे वह कैसे जुड़ेगा।

ययाति—विनाश और विभूति के बीच रुका पड़ा है यह एक राज-दण्ड।

विश्वरथ—विनयशील मानव समूह को कुचलने की मुझमें शक्ति नहीं है।

ययाति—(अत्यन्त खिन्न होकर) कवि उशनस ने मेरा राजदण्ड बनाया, वाक्पति ने इन्द्र का वज्र बनाया, दोनों कौन धारण करेगा? कौन पूरा करेगा अधूरा काम?

अदृष्ट होते हैं। विश्वरथ पृथ्वी पर सिर डालते हैं और फिर सहसा जागता है।

विश्वरथ—मैंने क्या सुना? पितरो! क्या कहते हो? मार्ग दिखाते हो या भूल-भुलैया में भटकाते हो? क्या राजदण्ड छोड़कर विभूतियों का नाश होने दूँ? (आर्त स्वर में) कुछ समझ में नहीं आता···मुझे मरने दो! यमराज! यमराज! तोड़ो मेरे बन्धन!

(फिर सो जाता है। वृत होता है और उसमें फिर एक महापुरुष आते हैं। विश्वरथ घबराया हुआ आँखें फाड़कर देखता है।)

कवि उशनस—गाधि की दिव्य विद्या के धनी! द्यावा पृथ्वी के संयोग के समान इस परम आनन्द को चारुचित्रनर्शी कवि से अतिरिक्त और कौन भोगेगा? (अदृष्य होते हैं।)

अगस्त्य—(वृत में अस्पष्ट रूप से) वत्स, मेरी विद्या की अभिवृद्धि कौन करेगा? (अदृष्ट होते हैं।)

गाधि—(वृत में अस्पष्ट रूप से) पुत्र, मेरे कुल को पिण्ड कौन देगा? (अदृष्ट होते हैं।)

रोहिणी—(वन में विनती करती है।)···और मैं·····(अदृष्ट होती है।)

जमदग्नि—(वृत में प्रार्थना करते हुए) मामा·····विश्वरथ·····(अदृष्ट होता है।)

लोपामुद्रा—(वृत में) जो साहस छोड़ बैठे वह मेरा नहीं हो सकता। उठो साहस बाँधो, द्यावापृथ्वी वेधस के चरणों में पड़े हैं।

(अदृष्ट होती है।)

सन्तान—(वृत में) पिता···पिता···।

(अदृष्ट होती है। विश्वरथ आँखें मलता हुआ उठता है।)

विश्वरथ—यह क्या? मेरा हृदय कहना नहीं मानता। पितरो!··· देवो क्या मुझे पागल बना देना चाहते हो?

(नींद की झोंक में पुनः सो जाता है। वृत बनता है, उसमें मनु आते हैं। पीछे से नौका में से उतरकर आता हुआ आर्यसमूह दिखाई देता है।)

मनु—अत्यन्त शीत हिम और उछलते हुए जल में से पशुओं की गर्जना से गूँजते हुए पर्वतों और बनों में से होकर एक-एक बार मैं आर्यों को सप्तसिन्धु में लाया—दुस्तर कठिनाईयों को पार कर के। कौशिक! मेरे वत्स!

विश्वरथ—मनुकुल के सर्जक·····।

(विश्वरथ जागता है।)

मनु—ले जा, ले जा, अपने स्वजनों को, भावी की विकट दुस्तरता के बुद्धि—बन्धन से मुक्ति में। अन्धकार से प्रकाश में। जैसे मैं लाया था वैसे—

विश्वरथ—(आँखें मलकर) मनु! मनुज मात्र के पिता! (व्याकुल हो कर) यह सब मैं कैसे कर सकता हूँ? मुझमें शक्ति नहीं बुद्धि नहीं, श्रद्धा नहीं।

(वृत के पास जाता है, उसमें लोपामुद्रा दिखाई देती है।)

लोपामुद्रा—मैं तो हूँ·····।

विश्वरथ—आप तो अगस्त्य की भार्या·····।

(वृत स्थिर होता है।)

लोपामुद्रा—मैं·····आर्य हृदय की आशा···शक्ति, बुद्धि और श्रद्धा सबसे अलग···फिर भी सबमें···और सब मुझमें—वरप्रदा।

विश्वरथ—(हाथ जोड़कर) आज्ञा कीजिये···मार्ग दिखाइए।

लोपामुद्रा—मार्ग दिखाएगा पक्षियों के मार्ग का जानने वाला, चलो··· (विश्वरथ निद्रित-सा उठ खड़ा होता है।)

विश्वरथ—तैयार हूँ···(वृत आगे चलता है, पीछे विश्वरथ निद्रित-सी दशा में पग बढ़ाता है।) भगवती ! क्या वह देव हैं, द्यावा-पृथ्वी के नाथ ?···ओह···(चौंककर) वृत में खड़ी लोपामुद्रा को देखता है। भगवती जो थी, वह तो नहीं हैं। यह क्या ?···आपका मुख फीका पड़ गया है···ओह···मानों आप भी पितृलोक में पहुँच गई हों···मैं नहीं देख सकता (आँखों पर हाथ रखता है।) नहीं, नहीं···(काँपता है। वृत में लोपामुद्रा बड़ी हो जाती है।) आप तो मानव से अधिक विराट अंगों वाली बन गई हैं।

लोपामुद्रा—चलो पितृलोक के पार·····।

विश्वरथ—कैसे चलूँ ? आपके मुख से देवमुख वाला स्वर निकलता है···भगवती ! (पग बढ़ाता है।) ओह···ओह···ओह··· (खड़ा हो जाता है।) चल नहीं सकता···मेरी गति शिथिल है···(लोपामुद्रा हाथ पकड़ती है। चारों ओर प्रकाश फैल जाता है। प्रकाश में ये दो जन दिखाई देते हैं। विश्वरथ आधे के समान होकर हाथ जोड़ता है।) पितरो !···मैं आपके द्वार पर आया तो हूँ, पर अपनी जीवन-सीमा का मैंने उल्लंघन नहीं किया है···गोत्रजों को पिण्डदान दिये बिना मैं···क्षमा···क्षमा···।

(घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़ता है। लोपामुद्रा चारों ओर फैलते हुए परे प्रकाश में मिल जाती है। विनयशील स्वर में विश्वरथ बोलता रहता है।)

विश्वरथ—देवाधिदेव ! मैं अशक्त होकर मरने को पड़ा हूँ। अपनी शक्ति में से मुझे भी भाग दीजिए—परम मध्यम और अन्तिम आदि सब शक्तियों में से। हे अग्नि ! मुझे ऐचंस प्रदान करो, तेजोमय करो ! अक्षय आश्रम के दाता इन्द्र ! मुझे सहस्त्रधा शक्ति दो जिसमें पुरुषत्व समा जाए। कवि ! देव ! आपकी उदारता असीम है। मेरी बुद्धि प्रेरित कीजिए।

(प्रकाश के दूसरी ओर सूर्य का स्वर्णमय बिम्ब चमकता है। विश्वरथ आँखों पर हाथ रख लेता है।)

दिशाएँ—किसी ओर भी मार्ग ढूँढ़ो यतो, मत ढूँढ़ो नरशार्दूल !

विश्वरथ—(घबराकर) क्या करूँ ?

देववाणी—श्रद्धाविहीन, अशक्त है !

देव पितरों से तुम्हें क्या काम है ?
त्याग तृष्णा स्थिर बनो, तुम स्थिर बनो,
रोक लो—अपने-चरण क्षण पर तुरम,
दृष्टि का दो भेद तुम त्रण के परे,
निरख लो, हे निरख लो वह सत्य क्षण का,
होम कर दो क्षण मनस्वी,
जीव तुम तत्क्षण
क्षण तुम्हें क्षण का सुपथ दिखलाएगा।

(प्रकाश धुँधला होने लगता है। चारों ओर से मन्त्रोच्चारण होता है और विश्वरथ पागल जैसा सुना करता है।)

सविता सम सत्य दिखाते हुए
त्वाष्टसम रूप खिलाते हुए
विधि सम दिव्याभा जगाते हुए
मेधावी बनो कवि विश्व के मित्र।
ऋत का लो शरण खोज

ऋतु मय हो धरो ओज ।
उठकर निज बल से सप्त भवन तुम भर दो,
हो बल के स्वामी सर्व भुवन जय कर दो,
कवि ! सत्य सरूप द्वय का सर्जन कर दो ।

विश्वरथ—ओह···ओह···

[अचेत होकर गिरता है । अन्धकार छा जाता है ।]

[परदा गिरता है और तुरन्त उठता है ।]

तीसरा प्रवेश

स्थान—वही ।

(अचेत होकर विश्वरथ पृथ्वी पर पड़ा है । रोहिणी और वृक आते हैं । रोहिणी विश्वरथ को पड़ा देखकर व्याकुल होती है ।)

रोहिणी—(चिल्लाकर) मेरे प्रियतम ! (विश्वरथ का भली प्रकार निरीक्षण करके) वृक, वे गए···पितृलोक में···मुझे छोड़कर···।

वृक—(दुःख से) दौड़ो, सहायता के लिए ।

(विश्वरथ हिलता है ।)

विश्वरथ—ओह···कौन, वृक ? और रोहिणी ! क्या हुआ ? रोहिणी रोहिणी ! (रोहिणी को गले लगाता है ।)

रोहिणी—(सहर्ष) कौशिक लौट आये·····(उलाहना देकर) मुझे छोड़कर चले गए थे न ?···सब कुछ छोड़ा और अन्त में मुझे भी ?

(विश्वरथ उसे फिर गले लगाता है ।)

विश्वरथ—रोहिणी, तुम मेरी प्राण हो । तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ? मेरे हृदय की शीतल छाया, मेरी एकान्त सम्पूर्ण सहचरी ! तुम्हें छोड़कर भला मैं कहाँ जा सकता हूँ !

रोहिणी—तब मुझे छोड़कर क्यों चले गये थे ?

विश्वरथ—देवों की आज्ञा थी। रोहिणी ! मुझे पितरों और देवों ने आज्ञा दी थी।

रोहिणी—(चौंककर) सच·····।

विश्वरथ—अभी यहीं आये थे हमारे पितर कुशिक, ययाति और मानवों के पिता मनु···और (पूज्य भाव से) वरुण और सूर्य देव की आज्ञा हुई···।

रोहिणी—नाथ, मुझे आप में श्रद्धा है। आप विश्वविजेता होंगे।

विश्वरथ—(सरलता से) मुझे अब द्वेष और कलह की दुन्दुभी का मोह नहीं रहा।

रोहिणी—पर आप लौट तो चलेंगे न ? गुरुदेव, भगवती, घोषा माँ, भरत और तृत्सु आपकी राह देख रहे हैं।

विश्वरथ—हाँ चलूँगा। मुझे आज्ञा जो मिली है।

रोहिणी—(विश्वरथ से लिपटकर) मेरे तपस्वी, आपके तप के तेज के आगे सप्तऋषियों का तेज भी धुँधला हो जायेगा। चलिए हम लोग चलते हैं।

विश्वरथ—हाँ, पर मैं छः दिन से भूखा हूं। स्नान के पश्चात् भोजन भी करेंगे।

रोहिणी—तो वृक, जाओ, गुरुदेव को सूचना दे आओ। (वृक जाना चाहता है। इतने में लँगड़ाता हुआ ऋक्ष और थकी हुई सुरा आती है।)

ऋक्ष—अरी सुरा, तूने मुझे जिन्दा ही मार डाला।

सुरा—अरे, यह है कौशिक और यह रहीं आपके गुरु की पुत्री। बढ़िये, बढ़िये।

(ऋक्ष को धकेलती है। वह पैरों पर गिरता है।)

कौशिक—ऋक्ष क्या करते हो ? उठो !

ऋक्ष—(लेटकर) नहीं उठूँगा। जब तक आप लौटकर नहीं चलेंगे तब तक बस यहीं पड़ा रहूँगा, मर जाऊँगा। मेरे शव को

बेदर्द गिध खा जायेंगे। यदि आप न चले तो मैं किस काम का रहूँगा। कोई मुझे दो कौड़ी को नहीं पूछेगा। मुझे ऋषिपद कौन देगा ? कौशिक, मेरे समान, तपस्विनी अगस्त्य कन्या के समान, ऋषियों और सिद्धी के समान, देव मात्र···

विश्वरथ—(हँसकर) अच्छा अच्छा अच्छा !

ऋक्ष—(चिल्ला-चिल्ला कर) चले बिना छोड़ूँगा नहीं। नहीं चलोगे तो मेरी और इस सुरा की हत्या आपके सिर चढ़ेगी। लीजिए मार डालिए ! अपने इस बाल-मित्र के टुकड़े-टुकड़े कर डालिए।

विश्वरथ—(हँसकर) अच्छा ! जिस तरह तुम्हारी इच्छा। मैं चलूँगा, अवश्य चलूँगा।

ऋक्ष—(खड़ा होकर) सच।

विश्वरथ—देव और पितरों ने भी यही आज्ञा दी है और तुम अब प्राण देने को तैयार हो जाओ तो मैं क्या नहीं कर सकता हूँ ? अभी चलूँगा। अब तो ठीक है ?

ऋक्ष—कौशिक, आपके बिना इस दुर्दमन के पुत्र ऋक्ष का तीनों लोकों में कोई नहीं है। कौशिक, चल रहे हो न ? (पुनः पूछता है। विश्वरथ सिर हिलाकर हाँ कहता है।) मेरे विश्वरथ···(हाथ फैलाकर विश्वरथ को गले लगाता है।)

रोहिणी—वक, तुम जाओ, जाकर गुरुदेव से कह आओ कि हम दोपहर के बाद आ रहे हैं।

ऋक्ष—वृक ! वृक क्यों कहने जाएगा ? मैं क्या मर गया हूँ ? मैं जाता हूँ···

विश्वरथ—पर तुम थके होगे।

ऋक्ष—कभी नहीं। ऋक्ष के बिना कौशिक के शुभ समाचार और कौन ले जा सकता है ? किसकी हिम्मत है ?

रोहिणी—पर थोड़ा···

ऋक्ष—नहीं, नहीं, यह चला (लंगड़ाता हुआ चला जाता है।)

विश्वरथ—वृक, वह गया तो है, पर उसकी बात कदाचित् ही कोई मानेगा। तुम भी जाओ, और सुरा को भी साथ ही लेते जाओ। जाओ!

सुरा—कौशिक! (पैर पकड़ती है।)

विश्वरथ—(उठाकर) सुरा, ऋक्ष की पत्नी बनोगी? ऋक्ष कहता था।

सुरा—(आँखें नचाकर मुँह बनाकर) पर आप मुझे आर्या नहीं बनायेंगे न!

रोहिणी—(उपहास में) क्यों बहुत अधीर हुई हो? (सुरा को चपत लगाती है। सुरा हँसती-हँसती चली जाती है। विश्वरथ से) और मैं भी अधीर बनी हुई हूँ, समझे!

विश्वरथ—पर मेरा धैर्य तो और भी कम हो गया है।

(दोनों गले मिलते हैं।)

(परदा गिरता है।)

पाँचवाँ अंक

समय—दिन दोपहर।

स्थान—(अगस्त्य के आश्रम के निकट राजा सोमक के हर्म्य में अग्निशाला में मन्द अग्नि जल रही है। चार-पाँच आसन रखे हैं। हर्म्य विश्वरथ और दिवोदास के हर्म्य की अपेक्षा साधारण है। एक सैनिक बैठा है। सुदास घबराया हुआ आता है। उसके बोलने तक में हिचकिचाहट है।)

सुदास—शृञ्जायराज हैं।

शृञ्जा सैनिक—कौन युवराज, सुदास, आइये राजा बाहर गये हैं।

सुदास—कब तक लौटेंगे?

शृञ्जय सैनिक—अब आने ही चाहिएँ। मुनि मैत्रावरुण के पास गये हैं।

सुदास—अच्छा, तो मैं बैठता हूँ। क्या यह सच है कि युवराज वीतहव्य सेना लेकर जाने वाले हैं?

शृञ्जय सैनिक—यह तो मैं नहीं जानता, पर हाँ कुछ बात चल अवश्य

रही है।

(सुदास सिर पर हाथ रख कर हताश बन बैठा है। सोमक का बेटा वीतहव्य आता है। वह सत्रह साल का उत्साही और रूपवान युवक है। उत्साह से उछलता-कूदता है।)

वीतहव्य—मेरा नाम किसने लिया।

सुदास—मैंने। कहाँ जा रहे थे वीतहव्य ?

वीतहव्य—नहीं जानता, पर सेना लेकर विजय करने जा रहा हूँ। हमारा अर्जुन बुलाने आया है। कैसा बलवान है ! है तो मेरे बराबर ही, पर उसके पिता उसके साथ सहस्त्र सैनिक भेज रहे हैं। (खिन्न होकर) मुझे तो श्रृञ्जयराज बीस भी नहीं देते। पर अब दो सौ घुड़सवार देने होंगे।

सुदास—किसलिए।

वीतहव्य—(हर्ष से) मैं अर्जुन के नगर में जाऊँगा और फिर हम लोग नगरों पर आक्रमण करेंगे। वहाँ से लौटकर मैं इतनी बड़ी सेना बना लूँगा कि फिर देखना ! अच्छा चलता हूँ। अर्जुन क्यों नहीं आया ? (जाता है।)

सुदास—(कटुता से) इतने से लड़के में भी कितना उत्साह ! सम्पूर्ण सप्तसिन्धु में मैं ही अकेला अभागा हूँ मेरे भाग्य में राज्य नहीं, सेना नहीं, गुरु नहीं। सब हैं, पर एक दुष्ट के पाप से मेरे हाथ में कुछ नहीं रहा। (सिर पर हाथ रख कर देखता रहता है) विनती करते हुए इन्द्र ! देव ! क्या मुझे इस प्रकार जीवित ही मरने के लिए जन्म दिया है ? (थोड़ी देर तक अग्नि की ओर देखता रहता है।) सबमें मैं ही अकेला निराधार···दाँत पीस कर) ऐसा जी करता है कि जान से मार डालूँ इसे। पर हो कैसे ? देव उसका रक्षण जो किया ही करते हैं।

(चुपचाप देखता रहता है। थोड़ी देर में बाहर पैरों की आहट होती है। इसलिए चुप शान्त हो जाता है। हट्टा-कट्टा सोमक आता है,

वह लगभग पैंतालीस वर्ष का है।)

सोमक—सुदास ? तुम इस समय कहाँ से ?

सुदास—श्रृञ्जयराज ! (गला रुँधता है) सोमक ! (करुणार्द्र हो जाता है।) शरण में आता हूँ। (पैरों पड़ता है।)

सोमक—शरण में ? क्या हुआ ? (सुदास को उठाता है। उपहास में) क्या पागल हुए हो ? जाओ, अपने हर्म्य में जाकर सो जाओ। (बैठता है।)

सुदास—श्रृञ्जयों के पति ! मैं यहीं बैठता हूँ। (बैठता है।) आपके अग्निकुण्ड के आश्रय में और जब तक आप मेरी प्रार्थना स्वीकार न करेंगे तब तक यहीं बैठा रहूँगा। वरुण के विशाल राज्य में मैं अकेला ही निराश्रय, निःसत्व स्वत्वहीन भटक रहा हूँ। और केवल आपके आश्रय की आशा से जिन्दा हूँ।

सोमक—अच्छा भाई, जो कहना हो शीघ्रता से कहो, भगवन् मैत्रावरुण अभी आ रहे हैं।

सुदास—(चौंककर) ऐं ! सोमक दो वर्ष पहले आपके और राजा दिवोदास के बीच बीस गाँवों के लिए झगड़ा हुआ था, स्मरण है ? मैं जब तृत्सुपति हो जाऊँगा, तब आपको बीस के सौ दूँगा। तब तो आप सन्तुष्ट होंगे ?

मुझे·····मुझे इस कौशिक से छुड़ाओ। मैं पैरों पड़ता हूँ। (हाथ जोड़ता है।)

सोमक—पर उसके पास है क्या ? उसके पास से तुमने राज्य छुड़वा लिया है, और छः दिन से वह सर्वस्व त्याग कर गोवन्त पर्वत पर देवों का आह्वान कर रहा है।

सुदास—(कटुता से) और साथ में तृस्यों के और तृत्सुओं के, मेरे माता-पिता के और तुम्हारे स्त्री-पुरुषों के हृदय बाँधकर लेता गया है। तीन दिन से गोवन्त के पास गाँव बसने लगा है।

सोमक—पर वह लौटे तब न ?

सुदास—लौटेगा। भरतों, तृत्सुओं और श्राञ्जयों पर राज्य करना किसे अच्छा नहीं लगता है !

सोमक—पर वह तो सब कुछ छोड़कर गया है।

सुदास—सब सुना कीजिए ! मैं तो उसे छुटपन से पहचानता हूँ न ! वह बड़ा पाखण्डी है।

सोमक—(हँसकर) अच्छा, समझा।

सुदास—(हाथ जोड़कर) हँसिए मत। पर सोमक, मैं तो हूँ। आप चाहें तो मुझे दास बना लीजिए, पर इस कौशिक से मेरी रक्षा कीजिए, ना मत कीजिएगा।

सोमक—राजा दिवोदास का पुत्र याचना करे तो उसे नाहीं की जा सकती है ? इसके लिए मुझे ही आपने क्यों खोज निकाला ? और भी तो बहुत से राजा लोग पड़े हैं।

सुदास—इसलिए कि आपको भी भरतों का बढ़ता हुआ प्रताप खटकता है। आपको भी तृत्सुओं के बढ़ते हुए राज्य में भाग चाहिए।

सोमक—(हँसकर) तभी मुझे राज्य का भाग देने आये हो।

सुदास—कौशिक के साथ रहकर मुझे महान् जनपद नहीं चाहिए। कौशिक रहित एक ग्राम भी मुझे बहुत है। मुझे उत्तर दो श्रृंजयराज, सहायता कीजिएगा न ?

सोमक—(थोड़ी देर विचार करके) सुदास, आज से नहीं, बचपन से ही तुममें द्वेष बहुत है।

सुदास—(हाथ जोड़कर) तो मेरे द्वेष को सन्तुष्ट करने का साधन कीजिए। आपका भी लाभ है। इतना मूल्य और कौन देगा ?

सोमक—देव और गुरु का विरोध करके जो लाभ चाहता है वह मूर्ख है, क्या बिना मूल्य दिये तुम्हारा द्वेष तृप्त नहीं हो सकता ?

सुदास—(कटुता से) कैसे हो ? उसने मुझे भिखमंगा बना दिया है। मैं राजा दिवोदास की आँखों का तारा था, आज वह मेरा त्याग करने को तैयार हो गए हैं।

सोमक—ईर्षालु और अन्धा—दोनों एक समान हैं। बिना मूल्य दिये ही सबल होना तुम्हारे हाथ में है। सच बताऊँ। तुम तो जन्म भर अन्धे रहे हो। अब साथ में क्या मुझे भी अन्धा बनाना चाहते हो? सुदास, तुम बचपन से ही कौशिक से ईर्ष्या करते-करते थक गए हो···

सुदास—हाँ पर कुछ नहीं हुआ। देव उसकी रक्षा करते हैं।

सोमक—देवों ने तुम्हें मूर्ख बनाया है। जब छोटे थे तब तुमने उसको मार डालने का प्रयत्न किया, और वह गुरु का स्नेहपात्र बन गया। शम्बर के दुर्ग से उसे मुक्त कराये जाने का भी तुमने विरोध किया, और अपने पिता को नाराज किया। पुरुकुत्स जैसे प्रतापी राजा की पुत्री से विश्वरथ का विवाह न होने देने के लिए तुमने अगस्त्य की देवी तुत्या पुत्री का त्याग किया, और समस्त आर्यों द्वारा तिरस्कृत हुए।

सुदास—आपने कैसे जाना?

सोमक—विश्वरथ को विवाहोत्सव के आनन्द से वंचित करने के लिए उस शुभ अवसर पर तुम फणि से भी अधिक कृपण बनकर लेन-देन का लेखा करने को बैठे—और तृत्सुओं की नजरों में गिर पड़े। कहीं विश्वरथ इन भरतों और तृत्सुओं को एक न कर दे, इसलिए तुमने उसे तृत्सुग्राम से बाहर निकाल दिया, और आज कौशिक महर्षि हो गया—और तुम समस्त सप्तसिन्धु के लिए कलंक बन गये।···और अब मुझे भी साथ घसीटना चाहते हो?

सुदास—(मरते हुए प्राणी के समान आक्रन्त करते हुए) तब मैं मर गया—जीवित ही मर गया।

सोमक—क्या नेत्र दूँ? जी जाओगे। पर तुम लोगे नहीं, मेरा विश्वास है।

सुदास—(निराशा से) कहिये, कहिये, इतना कहा तो और सब भी कह डालिये।

सोमक—जो साध्य नहीं उसकी धारणा से क्या लाभ ?

सुदास—(दाँत पीसकर) अर्थात् मेरे लिए वह स्वार्थ साधना असाध्य है ? सबके लिए यह असाध्य नहीं तो मेरे लिए ही असाध्य क्यों हो ?

सोमक—(उपहास) कौशिक के प्रताप को रोकना आज शशक्य, असाध्य और अकल्प्य है और कुछ कहना है ?

सुदास—तो क्या करूँ ?

सोमक—जो सब करते हैं, वही करो। सिर झुकाकर उसका महत्त्व स्वीकार करो, उसके प्रताप को अंगीकार करो।

सुदास—(खड़ा होकर) भगवती लोपामुद्रा भी प्रातःकाल यही कहती थीं कि···पर नहीं, मैं इसे कभी स्वीकार नहीं करूँगा, कभी नहीं, कभी नहीं।

सोमक—(हँसकर) अन्धे यह उसके तेज का मध्यान्ह है। जाकर ठण्डी छाया खोजो। जब उसकी सन्ध्या होगी तब जगत् तुम्हारा ही रहेगा।

सुदास—नहीं, इसके पहले तो मैं समाप्त हो जाऊँगा।

सोमक—क्या अधिक जीने की साध है ! तो जैसा पक्षी करते हैं, वैसा करो। जहाँ शान्तिपूर्वक सोया न जा सके वहाँ से उड़ जाओ। कम-से-कम ईर्ष्याग्नि का तो शमन होगा।

सुदास—कभी नहीं शमन होगा।

(बाहर पैर की आहट और किसी का अट्टहास सुनाई देता है।)

सोमक—जान पड़ता है अर्जुन आ गया।

सुदास—आपके मामा हैहयराज का पुत्र ! वह कब जाने वाला है ?

सोमक—कल प्रातःकाल।

(अर्जुन कार्तवीर्य आता है। वह लगभग अठारह वर्ष का है, पर

बहुत ही ऊँचा और सशक्त है। धूप में भटकने के कारण उसका रंग ताँबे जैसा हो गया है। उसकी आँखें विकराल और चंचल हैं। हिंसक पशु के मुख के समान उसके मुख पर भी हिंसा-वृत्ति है। उसका स्वर गम्भीर गर्जन करता हुआ निकलता है। उसके शरीर पर व्याघ्र-चर्म है और हाथ में बड़ी-सी गदा है। उसका वृद्ध सेनापति तालजंघ पीछे-पीछे आ रहा है। वह लंगड़ा है और आँख से काना है। उसके मुख पर क्रूरता विराजमान है। वह मितभाषी है और एक पीढ़े पर बैठ जाता है।

अर्जुन—(तुच्छवृत्ति से) शृञ्जयपति ! आपके इस सप्तसिन्धु से तो मैं तंग आ गया हूँ।

सोमक—(हँसकर) क्यों क्या बात है? अभी से तंग आ जाओगे तो पार कैसे पड़ेगा ? कल तो यहाँ की राजकन्या से विवाह करने का विचार करते थे।

अर्जुन—ये सब तीन कौड़ी के लोग कितना अभिमान करते हैं।

सोमक—क्या बकते हो अर्जुन, अरे यदि तुम जीभ को लगाम न दोगे मैं खड़ा नहीं होने दूँगा, और कोई शाप दे दूँगा वह ऊपर से।

अर्जुन—इसी से तो तंग आ गया हूँ। हमारा शूरसेन प्रदेश अच्छा है। कोई जीभ तो बन्द नहीं करता।

सोमक—(तिरस्कार से) सप्तसिन्धु के संस्कार के बिना वाणी पर संयम नहीं आएगा। पर भगवान अथर्वण ने क्या कहा ?

अर्जुन—ऋचीक.....

सोमक—फिर भूल की ! तुम्हारी जीभ कब नियन्त्रण में आयेगी ? भगवन् ऋचीक ने क्या कहा ?

सेनापति तालजंघ—कार्तवीर्य, अन्नदाता ने क्या कहा था ? शृञ्जयराज जो कहें वही करना चाहिए।

अर्जुन—(निर्लज्जता से हँसकर) अच्छा यों ही सही। भगवान् ने उदारता से कहा अनुकरण करता है। वत्स मेरी प्रतिज्ञा तो दृढ़ है।

महिष्मति कृतवीर्य के जीवित रहते मैं हैहयों का छोड़ा हुआ गुरुपद पुनः न लूँगा। जब तुम सिंहासन पर बैठना तब मुझे निमन्त्रित करना। मैं जीवित होऊँगा तो, नहीं तो मेरा जमदग्नि तो है ही। (अनुकरण रोककर) ओहो! आये बड़े जमदग्नि!

सोमक—अर्जुन सावधान! इस भूमि में देव और ऋषि पूज्य समझे जाते हैं। उनकी हँसी नहीं करनी चाहिए। तुम्हारे पिता का नाम भी तीस वर्षों के बाद गुरु जिना न चला।

सुदास—शृंजयराज, क्या भगवान् महाअथर्वण को ले जाने के लिए कार्तवीर्य आया है।

सोमक—हाँ, पर वे तो ना ही कर रहे हैं।

अर्जुन—(तुच्छता से) यह सुदास, उस वृद्ध राजा का पुत्र? हाँ वही न पहले जो कौशिक से लड़ा था?

सुदास—(गर्व से) हाँ मैं सुदास, दिवोदास का पुत्र, तृत्सुओं का युवराज।

अर्जुन—(तिरस्कार से) और मैं अर्जुन, हैहयराज का पुत्र। उस दिन तुम हार गये। तुम्हारे स्थान पर मैं होता तो··· (भयंकर द्वेष से देखता है।)

सुदास—तो?

अर्जुन—एक (गदा से आघात करना सूचित करता है।)

सुदास—(स्वगत) कोई है तो सही?

अर्जुन—पर वहाँ तो जो सोमकराज कहे वही सच। यह न हो, वह न हो, उसकी बात ही कैसे हो सकती है? (अनुकरण करते हुए) कहते हैं वामदेव और सौ भृगु जिलवा दूँगा।

सोमक—चलो ठीक हुआ।

अर्जुन—क्या करूँ? हैहयराज ने रोक दिया है, नहीं तो गुरु को पकड़ कर उठा ले आता।

सोमक—ऐसा नहीं कहना चाहिये। गुरु और देवों के बिना जगत मिथ्या है। समझे ? तेरा वीतहव्य अश्वारोही दो सौ योद्धा लेकर आयेगा।

अर्जुन—और अगस्त्य क्या कहते हैं ?

सोमक—फिर वही कहा ? भगवान मैत्रावरुण···

सुदास—क्या मुनि मैत्रावरुण भी साथ जाते हैं ?

सोमक—अर्जुन निमन्त्रण दे आया है। गुरुदेव अभी बात करने आते ही होंगे।

अर्जुन—गुरुदेव ने (अनुकरण करके) अभी कृपा नहीं की।

सोमक—वे आयें तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जाएगा। सप्तसिन्धु की समस्त शस्त्रास्त्र विद्या आ गई समझो।

सुदास—पर इन सबको वहाँ क्या काम है ?

सोमक—हैहयराज महिष्मत कहते हैं कि नागों पर बड़ा भारी आक्रमण किया जाए।

अर्जुन—उसकी पत्नी बहुत अच्छी है।

सोमक—(क्रोध से) सावधान अर्जुन, तुम तत्काल अपने जनपद को लौट जाओ।

अर्जुन—(हँसकर) उसमें क्या है ? (सोमक को भ्रूभंगकर देखता है और रुकता है।) आपके यहाँ कितने भगवान और भगवती हैं ?

सोमक—हैहयराज ने तुम्हें विद्याभ्यास के लिए भिजवाया होता तो कुछ सीखते। तुम्हारे इन सब अनार्य लक्षणों की तो सीमा हो गई।

अर्जुन—कौन कहता है कि मैं अनार्य हूँ, और यदि हूँ तो उसमें बुरा क्या है ? अपने वीतहव्य को मेरे साथ आने दीजिए, थोड़ा-बहुत विद्याभ्यास भी करा दूँगा।

सोमक—वह अगस्त्य का शिष्य है।

अर्जुन—अगस्त्य भगवान् और उनकी भगवती दोनों आयें तो ?

सोमक—फिर बोले ।

(सैनिक आता है ।)

सैनिक—राजन् भगवान् ऋचीक के पुत्र और वामदेव आये हैं ।

सोमक—अच्छा ! (सुदास) सुदास, अब तुम्हारी बात फिर होगी । मैंने जो कहा है उस पर विचार करना ।

सुदास—अर्थात् मुझे तो आप निराश कर ही रहे हैं ।

सोमक—धूल उछालने से सूर्य अस्त नहीं हो सकता, वह फिर लौटकर तुम्हारी ही आँखों में गिरेगी ।

(सुदास जाना चाहता है ।)

सोमक—इस मार्ग से नहीं—पीछे के मार्ग से जाओ । (सुदास निर्दिष्ट मार्ग से चला जाता है) हैहय, अपनी जीभ और अपना व्यवहार वश में नहीं रखोगे तो मैं खड़ा नहीं होने दूँगा ।

तालजंघ—सुना कार्तवीर्य ?

अर्जुन—(निर्लज्जता से हँसकर) हूँ ।

सोमक—सरस्वती तट पर आए हो तो कुछ सीखकर जाओ ।

अर्जुन—सरस्वती तट मुझे क्या सिखाएगा !

सोमक—अपने पिता जी से कहना कि थोड़े वर्ष किसी गुरु के पास छोड़ दें तो सीख जाओगे ।

अर्जुन—(गर्व से) हा-हा-हा, सब गुरुओं को वहीं उठा ले जाऊँ तो ?

सोमक—अर्जुन, गदा रख दो । गुरु जी के आगे गदा लेकर बैठना ठीक नहीं होगा ।

अर्जुन—मैं जब नमस्कार करूँगा तब मेरे साथ यह भी करेगी । यही तो मेरा तीसरा हाथ है ।

सोमक—नहीं, ऐसा नहीं होगा ।

(अर्जुन की गदा लेकर सोमक दूर रखता है । जमदग्नि और वामदेव आते है । ऋषि का शिष्य वामदेव अधेड़ अवस्था का है ।)

जमदग्नि—सृंजयराज, गुरुदेव अभी आते हैं।

अर्जुन—अच्छा।

सोमक—ठीक है। कौशिक का समाचार ?

जमदग्नि—(खेद से) कुछ भी नहीं। कौन जाने, देवों ने क्या करने की ठानी है।

सोमक—अब ठीक होगा क्या आप अर्जुन के साथ नहीं जा रहे हैं ?

जमदग्नि—नहीं, विश्वरथ को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगा।

अर्जुन—उसे भी साथ ले लो।

(सब इस धृष्टता पर हँस पड़ते हैं। वीतहव्य दौड़ता हुआ हर्षित होकर आता है।)

वीतहव्य—गुरुदेव आ गए।

(अगस्त्य धीरे-धीरे गम्भीर और स्वस्थ भाव से आते हैं। सब पैर पड़ते हैं। अर्जुन न चाहते हुए भी ज्यों-त्यों पैर पड़ता है।)

सोमक आदि—हम वन्दना करते हैं।

अगस्त्य—शरद शतं जीव।

(अगस्त्य बैठते हैं और सब भी आस-पास बैठते हैं।

सोमक—हम आपकी ही आज्ञा की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

अगस्त्य—राजा महिष्मन का छोटा पुत्र, क्यों ?

सोमक—गुरुदेव, क्या आपने हैहयराज को देखा है ?

अगस्त्य—मैं विद्याभ्यास करता था तब एक बार की मुझे स्मृति है। इस अर्जुन जैसे ही थे।

अर्जुन—अच्छा ? क्या हैहयराज को आपने देखा है ? उन्हें स्मरण नहीं है। आपके गुरु के घर पर अतिथि बनकर ही आए। वे गुरु जी की गौएँ चुराकर ले जाने के विचार से आए थे।

अर्जुन—(निर्लज्जता से हँसकर) हा-हा-हा, और कितनी चुरा ले गए ?

अगस्त्य—उन्हें उनके साथी लौटा ले गए।

अर्जुन—क्यों ?

अगस्त्य—अपने बाण से मैंने उनका कर बेंध दिया था, इसी से। कहो, अब तुम्हारे पिता जी को क्या चाहिए ?

अर्जुन—हैहयराज वृद्ध हो गए हैं, इसलिए उन्होंने अपने गुरु को बुलवाया है।

अगस्त्य—भगवान् महाअथर्वण ने तो जाना अस्वीकार कर दिया। क्यों जमदग्नि तुम जाओगे ?

जमदग्नि—विश्वरथ को छोड़कर मैं कहाँ जा सकता हूँ ?

सोमक—पर वामदेव और सौ भृगुओं को भिजवाने का वचन दिया है।

अगस्त्य—तीस वर्ष तक तुम्हारा देश विद्याविहीन रहा।

अर्जुन—हाँ···और अभी तक है।

अगस्त्य—कैसी दुर्दशा है ?

अर्जुन—इसमें दुर्दशा क्या ?

अगस्त्य—तो मेरा चलना निरर्थक है।

वीतहव्य—नहीं, नहीं गुरुदेव ! चलिए न !

सोमक—नहीं, नहीं भगवन् ! अर्जुन का कहना न मानिएगा। इस वृद्ध सेनानी ने मुझे सब समझा दिया !

अगस्त्य—क्या ?

सोमक—मैंने आपसे कहा न गुरुदेव ? मन्त्रोच्चार और यज्ञविहीन शूरसेन और अवन्ति की भूमि पर से देवों की कृपा हट गई है। आर्यों की नागों-जैसी दुर्दशा हो रही है और राजा महिष्मत भी उनके पीछे पड़े हैं।

अर्जुन—जरा वृद्ध।

सेनापति तालजंग—कृपानाथ, महिष्मत ने आपसे मन्त्रबल और शस्त्रविद्या दोनों की याचना की है। यदि भगवान् पधारने की कृपा करें तो ?

अगस्त्य—इस समय मैं कुछ नहीं कर सकता।

जमदग्नि—अभी तो कौशिक ही की चिन्ता लगी है।

सोमक—देव, इन्द्र और आपकी कृपा से उसका तो कल्याण हो ही जायगा।

अर्जुन—उनका मुझे मोह नहीं है। पर यदि देव की कृपाविहीन भूमि में ऋत की स्थापना होती हो, तो मैं सरस्वती-तट छोड़ सकता हूँ।

वीतहव्य—(विनयपूर्वक) भगवान्, यह क्या कहते हैं ?

(सोमक उसका हाथ दबाकर रोकता है।)

अगस्त्य—शूरसेन जनपद का विस्तार कितना है ?

सेनापति तालजंग—जैसे-जैसे आगे बढ़े वैसे-वैसे विस्तार बढ़ता जाता है। अब तो हमने अवन्ति नाम का जनपद बसाया है।

अर्जुन—थोड़े ही समय में पृथ्वी के छोर तक पहुँच जायेंगे।

वीतहव्य—(उत्साह से) हाँ, हाँ।

सेनापति—आप आएँ तभी, नहीं तो नहीं।

सोमक—भगवन्, देवों के द्रष्टाओं से लड़ने में ही हमारे शूरवीरों का शौर्य बढ़ेगा। इसीलिए तो मैं वीतहव्य को भेजने की सोच रहा हूँ।

वामदेव—भगवन्, आर्यों के बाहुवीर्य को यदि मार्ग मिले तो सूर्य के मार्ग तक सप्तसिन्धु की सीमाएँ खींच ले चलें।

सोमक—शम्बर तो गुरुदेव और राजा दिवोदास के प्रताप से गया। अब यदि हमारे बाहुबल को मार्ग ही न मिला तो हम लोग आपस में ही कट मरेंगे।

जमदग्नि—पर सप्तसिन्धु का क्या होगा ?

सोमक—विश्वरथ तो है ही। क्यों, गुरुदेव ने क्या निश्चय किया ?

अगस्त्य—देव ने अभी आज्ञा ही नहीं की है।

सेनापति तालजंग—देव कब आज्ञा करेंगे ?

अगस्त्य—जब सप्तसिन्धु का भार मेरे सिर पर से देव उठा लेंगे तब।

सोमक—तब राजा महिष्मत को क्या सन्देश भिजवाऊँ ?

अगस्त्य—यही कि देव का आवाहन करें और ऋत का पालन करें सप्तसिन्धु ऋत की रक्षा के लिए रक्त बहा सकता है, किसी के विनाश के लिए नहीं।

वीतहव्य—यह क्या कहते हैं, गुरुदेव ?

अगस्त्य—(हँसकर) पुत्रक, तुम यह नहीं समझ सकते। (अर्जुन से) कार्तवीर्य, अपने पिता से जाकर कहना कि यदि हमें बुलाने की इच्छा हो तो···

अर्जुन—है, न। आपके चलने भर की देर है।

अगस्त्य—हैहयराज स्वतः आकर कहें।

अर्जुन—पर मैं तो कह रहा हूँ।

अगस्त्य—तुम्हें यह अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है।

सोमक—गुरुदेव, आपकी बात सच है। राजा महिष्य के आए बिना ठीक व्यवस्था नहीं होगी और (वामदेव से) आप ?

जमदग्नि—गुरुदेव की इच्छा ही महाअथर्वण की इच्छा है।

(बाहर हल्ला सुनाई देता है। कौशिक और मैत्रावरुण की जय का घोष हो रहा है। सब एकचित होकर सुनते हैं। ऋक्षधूल धूसरित है, किन्तु हँसता, लंगड़ाता और काँपता हुआ दौड़ा आता है। उसके पीछे-पीछे चार-पाँच व्यक्ति भी आते हैं।)

ऋक्ष—हे ! मुनियों में उत्तम गुरुदेव ! आप कहाँ हैं ?

लोग—(बाहर) महर्षि कौशिक की जय ! महर्षि अगस्त्य की जय।

अगस्त्य—यह क्या है ?

ऋक्ष—भगवान् अगस्त्य, प्रणाम ! (चरण छूता है।) गोवन्त पर्वत पर से महर्षि विश्वामित्र उतर कर आ रहे हैं। चलिए, चलिए।

जमदग्नि—(हर्ष से) ऐं ! थोड़ा विस्तार से कहो, क्या बात है ?

ऋक्ष—अपने प्रिय मित्र का विछोह सहन करने में अशक्त मैं—दुर्दसन

का पुत्र और आपका शिष्य—देवों का आवाहन करने के लिए कौशिक के पास गोवन्त पर्वत पर गया।

अगस्त्य—तू कल तो यहीं था।

ऋक्ष—रात में गया, मुझे खींच ले गए। हे भगवान्, पर्वत पर पितृलोक से लौटे हुए भगवान् विश्वामित्र मिले।

जमदग्नि—एँ!

ऋक्ष—भगवान् एक अक्षर भी असत्य कहता होऊँ तो आपकी और देवों की शपथ। मैंने कहा—लौट चलो, नहीं तो प्राण त्याग करता हूँ। भगवान् विश्वामित्र ने कहा—पितरों की आज्ञा हुई है, मैं लौट चलता हूँ ऋक्ष! प्रिय वत्स, जाकर गुरुदेव को, भगवती को, भरतों और ऋत्विजों को सूचना दो। और मैं दौड़ता आया। देखते नहीं, इन पैरों में छाले पड़ गए हैं। रक्त की धारा बह रही है।

('भगवती लोपामुद्रा की जय' की ध्वनि होती है। द्वार पर खड़े लोग मार्ग छोड़ते हैं और लोपामुद्रा तथा वृक आते हैं। लोपामुद्रा के नेत्र तेजस्वी और उल्लसित हैं उनके मुख पर विजय का मोहक हास्य है। अर्जुन धृष्टता से लोपामुद्रा को देखता है।)

लोपामुद्रा—(हर्ष से) मैत्रावरुण, पुत्रक आता है।

वृक—(चरण छूकर) हाँ भगवान् दो घड़ी में कौशिक उतर आएगा।

अगस्त्य—रोहिणी कहाँ है?

वृक—कौशिक के पास रह गई है। (आँखें पोंछकर) हाँ भगवान्! भगवान्! कौशिक तो देव बन गए हैं।

ऋक्ष—मैं वही कहता हूँ कि विश्वामित्र तो महर्षियों में श्रेष्ठ बन गए हैं। पितरों ने अपने मुख से उनका सत्याकार किया है।

अगस्त्य—(आँखें बन्द करके प्रार्थना करते हुए) इन्द्र! आपका औदार्य निःसीम है। वज्रधारी! हमारी प्रार्थना सुनकर आपने शक्ति दी है।

लोपामुद्रा—मुनिवर्य सप्तसिन्धु पर देवों की कृपा है।

अगस्त्य—(हँसकर) और हम पर भी।

लोपामुद्रा—चलिए, हम लोग लिवाने चलें। सृञ्जयराज, क्या आप चलेंगे? वृक, क्या राजा दिवोदास को सूचना भिजवाई?

ऋक्ष—मैंने पूरे गाँव में सूचना दे दी है।

सोमक—वीतहव्य, जाओ अपनी माता को बुला लाओ।

वीतहव्य—(हर्षित होकर) हाँ, हाँ, कौशिक महर्षि हो गए?

लोपामुद्रा—मैत्रावरुणि, क्या अर्जुन से कह दिया है?

अगस्त्य—(क्षण-भर आँखें बन्द करके) अर्जुन, जाकर अपने पिता से कहना कि देव ने अगस्त्य को आने की अनुमति दे दी है।

अर्जुन, सोमक, तालजंग—(सहर्ष) एँ! सचमुच?

अगस्त्य—हाँ। मुझे इसमें देववाणी सुनाई देती है। अर्जुन, राजा महिष्मत से कहना कि आकर मुझसे मिले। यदि मुझे विश्वास हुआ कि वहाँ देवज्ञा पाली जाएगी तो चलूँगा। साथ में चलेंगे दो सौ देवज्ञ तपस्वी, वामदेव और दो सौ भृगु, वीतहव्य और पाँच सौ सृंजय, एक सहस्र भरत और राजा वरुण का ऋत सर्वत्र स्थापित होगा।

(सब स्तब्ध हो जाते हैं।)

लोपामुद्रा—(प्रशंसापूर्ण होकर) मैत्रावरुणि धन्य है। क्या सप्तसिन्धु की सीमाएँ दिगन्त तक ले जाने वाले हो?

अगस्त्य—जहाँ ऋत प्रवृत होता है, वही सप्तसिन्धु है। पर राजा महर्षि महिष्मत पहले मिलें तो सही। चलो!

(सब जाने के लिए उठते हैं।)

अर्जुन—(लोपामुद्रा से) आप भी चलोगी न?

लोपामुद्रा—भगवान् मैत्रावरुणि की जैसी आज्ञा होगी।

अर्जुन—यदि आप चलें तो मैं अपने पिता को सिर पर उठाकर ले आऊँ।

लोपामुद्रा—उतावले न बनो वत्स ! हमें ले चलना इतना सरल नहीं है। चलो, चलते हो न सोमक ? क्या पौरवी चली गई ?

सोमक—लगता है चली गई।

अगस्त्य—चलो। (सब जाते हैं। सुदास पीछे से बाहर आता है।)

सुदास—तृत्सु, शृञ्जय, वीतहव्य, अगस्त्य और लोपामुद्रा सब सप्तसिन्धु की दिग्विजय करेंगे। देव मुझे भूल नहीं गए हैं। (दुष्टता से हँसकर) कौशिक, सप्तसिन्धु को संगठित करो। तुम्हारा मध्याह्न है, मैं ठण्डी छाया खोजूँगा। जब तुम्हारी सन्ध्या होगी—तब तुम्हारा किया हुआ सब ही हो जाएगा·····हा हा !

(परदा गिरता है।)

छठा अंक

समय—चार घड़ी पश्चात् ।

स्थान—गोवन्त पर्वत ।

(स्त्री-पुरुष की टोलियाँ—भरत, तृत्सु और सृञ्जय, मघवन, सैनिक, सब एकत्रित हैं, और अधिक संख्या में आ रहे हैं । लोग मृदंग, रणशृंग शंख और मंजीरे बजाते हैं । कोई नाचते हैं, कोई अबीर-गुलाल उड़ाते हैं और सब गोवन्त पर से उतरकर आते हुए पैड़ियों की ओर टकटकी लगाकर देखते हैं । बीच-बीच में 'कौशिक की जय' 'मैत्रावरुण की जय' आदि घोष होता है ।)

भरत, तृत्सु—कौशिकराज की जय ।

दस्यु—विश्वामित्र ऋषि की जय !

सब—जय ! जय ! जय !

(ऋक्ष आता है । साथ में कितने ही मित्र और मघवन हैं । लोग उसके पैर पड़ते हैं । सब उसे घेर लेते हैं और उसकी बात सुनते हैं । ऋक्ष की शान का पार नहीं है ।)

ऋक्ष—अरे ! फिर मैं गया, बस, पैर ही पकड़कर बैठ गया, चलिए, बस चलिए ! न चलेंगे तो मर जाता हूँ, प्राण छोड़ता हूँ, मेरे

शिष्य प्राण छोड़ते हैं। (सब प्रशंसापूर्वक देखते हैं।) भरत तृत्सु प्राण छोड़ते हैं। कौशिक कहने लगे—नहीं मुझे पितरों की आज्ञा नहीं है। मैंने कहा—पितर मुझे मरने न देंगे। न आएँगे तो ऋक्ष की मृत्यु होगी, आपके चरणों क पास। देव आपको क्षमा न करेंगे और फिर विश्वामित्र महर्षि रो दिये।

सुनने वाले—ऐं! ऐं! क्या कहते हो?

ऋक्ष—(शान से) क्या कहता हूँ! मुझे कभी असत्य बोलते सुना है? कौशिक की आँखों से आँसू गिरने लगे। उन्होंने गद्‌गद् कण्ठ से कहा—ऋक्ष! प्रिय मित्र, मेरे दाहिने हाथ! मैं सब देख सकता हूँ पर तुम्हें मरते नहीं देख सकता। चलो मैं चलता हूँ।

जयन्त तृत्सु—धन्यवाद ऋक्ष, तुमने हमारी लाज रख ली। (धीरे से) उस दुष्ट सुदास ने तो तृत्सुओं को कलंकित किया पर तुमने हमें विशुद्ध कर दिया।

दो चार व्यक्ति—धन्य है दुर्दमन के पुत्र!

ऋक्ष—चाहे जैसा हूँ, वह मैं हूँ, तृत्सु। क्या अपनी कीर्ति को कलंकित होने दूँगा? (शान से चारों ओर देखता है।)

जयन्त तृत्सु—धन्य है ऋक्ष!

एक मघवन—ऋक्ष न होता तो हम लोग मर ही गये होते! धन्य है! धन्य है!

दस्यु—ऋषि ऋक्ष की जय!

लोग—जय! जय! जय!

(गय का पुत्र शक्ति और काली दोनों गौतम मघवन के साथ आते हैं। शक्ति दौड़ता हुआ ऋक्ष के पास जाता है।)

शक्ति—ऋक्ष! ऋक्ष! कौशिक कहाँ हैं?

ऋक्ष—अभी आने वाले हैं।

शक्ति—अब तो मुझे छोड़कर न जायेगा न?

ऋक्ष—(साहस पूर्वक) क्यों जायेंगे? मुझसे कहना, मैं पकड़ रखूंगा

हाँ···(सब हँसते हैं।)

लोग—धन्य है ! ऋषि ऋक्ष की जय ! आये गुरुदेव आये, राजा आये। मुनि अगस्त्य की जय ! राजा दिवोदास की जय ! कौशिक की जय ! ऋषि विश्वामित्र की जय !

अगस्त्य, लोपामुद्रा, दिवोदास और उनका परिवार, विश्वरथ का परिवार, सोमक का परिवार और अर्जुन आते हैं। लोग हटकर मार्ग देते हैं, प्रणिपात करते हैं, और जय बोलते हैं।

दिवोदास—(गद्गद् स्वर में) मुनिवर्य, आज मेरे हर्ष का पार नहीं है। नहीं तो मैं अपने चाण्डाल पुत्र को कभी क्षमा नहीं करता।

अगस्त्य—सुदास को संभाल कर रखना। यह दिन-पर-दिन असंयत होता चला जा रहा है।

दिवोदास—वह दुष्ट भी है, द्वेषी भी है। कौशिक को देखते ही उसका रक्त खौलने लगता है। मैं इसे क्या करूँ ? देखिये, अभी भी नहीं आया।

अगस्त्य—घबरायें नहीं। कौशिक में द्वेष जीतने का तपोबल है।

शक्ति—गुरुदेव ! कौशिक आये—

(सब गौवन्त पर्वत की ओर देखते हैं) पैड़ियों पर कृश किन्तु तेजस्वी विश्वरथ हाथ में दण्ड लेकर उतरे चले आते हुए दिखाई देते हैं। साथ रोहणी उनका कमण्डल लिए आ रही है। दोनों को देखकर लोग जयघोष करते हैं और बाजे बजाते हैं। दोनों उतरते हैं, अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य का लाल प्रकाश उनके ऊपर पड़कर उन्हें सुवर्ण रंगी बना रहा है।)

लोग—विश्वामित्र कौशिक की जय ! जय ! जय ! जय !

(दोनों उतर कर आते हैं। नीचे आकर विश्वरथ दौड़ कर अगस्त्य को साष्टांग दण्डवत करते हैं।)

विश्वरथ—गुरुदेव ! भगवती !

(सबकी आँखों में आँसू हैं। अगस्त्य उन्हें उठाकर गले लगाते हैं।)

मध्यम में शक्ति का वास हो। आज हमें वीरों की संघ-रूप शक्ति मिली है। वज्रधारी, बल के ईश हम सब लोकों को जीतें। (विश्वरथ गहरे विचार में है, उनसे) विश्वरथ, विश्वमित्र, क्या विचार करते हो ? देव की आज्ञा हो चुकी है।

(सब चुप होकर टकटकी लगाकर विश्वरथ की ओर देखते हैं। वह धीरे से हाथ जोड़कर मुख ऊँचा करते हैं। उनकी आँखें आकाश की ओर देखती हैं। उनकी आखों में आँसू हैं, स्वर में कम्पन है।)

विश्वरथ—देव ! पितृगण ! आपने आज्ञा दी, मैं शिरोधार्य करता हूँ मुझे ऋत से विचलित न होने देना।

(तत्काल परदा गिरता है। गिरने के पश्चात 'विश्वमित्र की जय,' ध्वनि थोड़ी देर तक सुनाई देती है।)

———

PK
1859
M8V518

Munshi, Kanaiyalal Maneklal
Visvamitra

East Asia

PLEASE DO NOT REMOVE
CARDS OR SLIPS FROM THIS POCKET

UNIVERSITY OF TORONTO LIBRARY

UTL AT DOWNSVIEW
D RANGE BAY SHLF POS ITEM C
39 13 30 21 08 017 5